योगविद्या

वर्ष 5 अंक 8
अगस्त 2016
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2016

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो : 1-2: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती; 3-4: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

भक्ति का विकास

भक्ति को विकसित करने का सबसे सरल उपाय है ईश्वर की लीलाओं का बारम्बार श्रवण। हर बार जब तुम प्रभु की लीला और उनके गुणगान का श्रवण करते हो तब तुम्हारे मन में प्रभु की एक छवि बनती है, और बार-बार श्रवण करते जाने से यह छवि और अधिक स्पष्ट एवं देदीप्यमान् होती जाती है।

सुनार सोने के टुकड़ों को काटते समय एक मोम के टुकड़े से जमीन पर गिरे स्वर्णकणों को एकत्र करता है। मोम का वह टुकड़ा सोने के कणों को एकत्र करते रहने से कुछ दिनों के बाद स्वयं सोने के टुकड़े के समान चमकने लगता है! इसी तरह जब भक्त बार-बार प्रभु की लीलामृत का रसास्वादन करता है तब उसके अन्त:करण में उनका स्वरूप उत्तरोत्तर प्रकाशित होता जाता है। जब वह स्वरूप भक्त के मन में स्पष्ट और स्थिर हो जाता है तब भक्त को भगवान का निरंतर स्मरण बना रहता है और वह उनके प्रति प्रबल भक्ति भावना का अनुभव करता है।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 5 अंक 8 · अगस्त 2016
(प्रकाशन का 54 वाँ वर्ष)

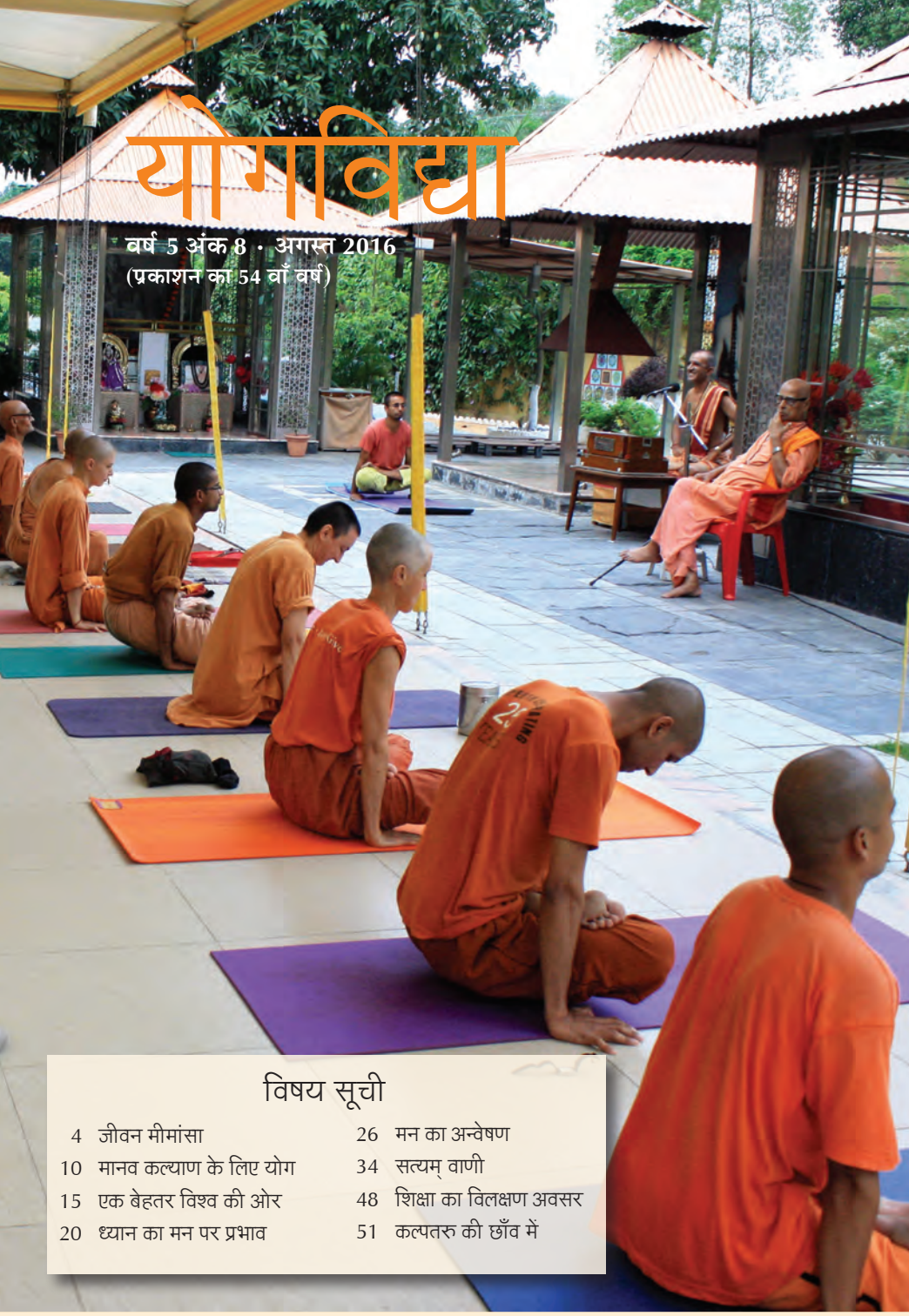

विषय सूची

4 जीवन मीमांसा
10 मानव कल्याण के लिए योग
15 एक बेहतर विश्व की ओर
20 ध्यान का मन पर प्रभाव
26 मन का अन्वेषण
34 सत्यम् वाणी
48 शिक्षा का विलक्षण अवसर
51 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

जीवन मीमांसा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

ईश्वर की साकार अभिव्यक्ति का नाम ही जीवन है। मूर्तिमंत आनन्द ही जीवन है। जीवन आध्यात्मिक आनन्द की पराकाष्ठा है। जीवन एक चेतनामयी सरिता है। प्रत्येक अणु में जीवन है। प्रत्येक वस्तु में प्राण है। निर्जीव तो कुछ है ही नहीं। एक पत्थर के टुकड़े में भी प्राण है। प्रकृति जीवनमय है। इसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध कर दिया है।

काल के अनंत सिंधु में जीवन एक यात्रा है, जहाँ दृश्य बदलते रहते हैं। अशुद्धता से शुद्धता, घृणा से विश्व-प्रेम, मृत्यु से अमरत्व, अविद्या से सनातन विद्या, दु:ख से शाश्वत सुख, दुर्बलता से कर्मठता की ओर की यात्रा का नाम ही जीवन है। जीवन का महान् अवसर ईश्वर ने अपने संतानों को भगवदोन्मुख होकर अपने साक्षात्कार के लिए प्रदान किया है।

सेवा तथा आत्म-समर्पण ही वास्तविक जीवन है। प्रेम ही जीवन है। समन्वय तथा सामंजस्य ही जीवन है। जीवन कविता है, गद्य नहीं। जीवन कला है, विज्ञान नहीं। जीवन आराधना है। हम सब यहाँ पथिक हैं, जिनको शीघ्र ही प्रस्थान करना है। हमारा पुरुषार्थ तो खोये हुए पैतृक अधिकार तथा भूली हुई सम्पत्ति की पुन: प्राप्ति के लिए है। ईश्वर के साथ अपनी एकता का ज्ञान प्राप्त करना ही हमारा मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य के बिना जीवन निरर्थक है। जीवन तभी सार्थक होता है जब अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर होती जीवात्मा का परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है।

जीवन-लक्ष्य

जीवन का वास्तविक उद्देश्य है अपने जीवन के स्रोत की पुन: प्राप्ति। जैसे नदी सिन्धु से मिलने के लिए व्याकुलता से गतिशील रहती है और अंतत: उसी स्रोत में समा जाती है जहाँ से उसके जीवन की यात्रा आरम्भ हुई थी, जैसे अग्नि-ज्वालाएँ तब तक जलती रहती हैं जब तक वे अपने स्रोत में विलीन नहीं हो जातीं, वैसे ही जब तक हमें भगवद्-कृपा की प्राप्ति न हो और भगवत्-साक्षात्कार न हो तब तक आतुर ही रहना है।

मनुष्य का चरम लक्ष्य अपने अन्तर स्थित, नित्य विद्यमान रहने वाले दिव्यत्व को विकसित करना है। अहंकार को मिटाना तथा ईश्वर में लीन होना ही जीवन का एकमात्र ध्येय होना चाहिए। इस सीमित जीवन द्वारा असीम जीवन की प्राप्ति ही मुख्य उद्देश्य है।

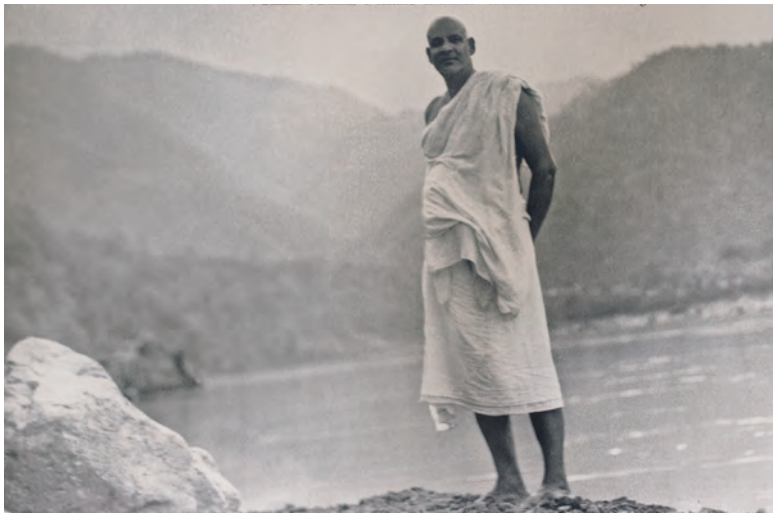

भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन

आध्यात्मिक जीवन ही वास्तविक तथा अनन्त जीवन है। आधुनिक जीवन, जो असुरक्षित, भययुक्त, तनावपूर्ण तथा सीमित है, वास्तविक जीवन नहीं है। सत्ता, सम्पत्ति तथा भोगविलास का संग्रह जीवन का लक्ष्य नहीं है। ऐसे जीने से न तो मानसिक शान्ति मिलती है, न ही आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त होता है। इन्द्रियजन्य सुख के लिए जीना कोई जीवन नहीं है। विषय-सुख तो मधु से ढके उग्र विष के समान है। यह तो रुपये में पाँच पैसे सुख और पंचानवे पैसे दु:ख के मिश्रण के समान है।

विषय भोगों में तो कई तरह के पाप, दु:ख, दोष, आसक्तियाँ, बुरी आदतें तथा मानसिक अशांति भरी रहती है। विषय-सुख भक्ति तथा भगवत्-तत्त्व की खोज के लिए अपेक्षित मानसिक क्षमता को क्षीण करते हैं। विषयासक्ति जीवन सत्ता, प्रकाश, बल, स्मृति, धन, वीर्य, पवित्रता तथा प्रभु भक्ति का हरण करती है। यह मनुष्य को नरक के रास्ते में ले जाती है।

सांसारिक जीवन तो दु:खों, कष्टों और बन्धनों से भरा हुआ है। यह सीमित जीवन घृणा, ईर्ष्या, स्वार्थ, कष्ट, विश्वासघात, चिन्ता, व्यग्रता, क्लेश, रोग, मृत्यु, असत्य, नीचता, छल, कपट, प्रतिस्पर्धा, मलिनता, तामसिकता, कलह, कल्पना, विरोध, युद्ध, निराशा, उत्साहहीनता, क्रूरता, व्याकुलता तथा अशान्ति जैसे दोषों और दुर्बलताओं से पूर्ण है। सब पदार्थ काल्पनिक सुख से ढके रहते हैं, जैसे सोने का पतला पानी चढ़ाया गया हो। होता तो पीतल है, पर दिखता अवश्य सोना है। इस संसार में वस्तुत: सभी कुछ खोखला तथा तथ्यहीन होता है,

जैसे कुनैन की गोली में मीठी चासनी लपेट दी गई हो। कहने मात्र को सुख, पर वास्तव में यह जीवन तो क्लेशपूर्ण है।

सांसारिक जीवन मिथ्या है, मायावी है। अन्ततोगत्वा धूल ही हाथ लगती है। यह जीवन व्यर्थ के वार्तालाप, गप्प मारने तथा खाने में व्यतीत हो जाता है। सब-कुछ छल मात्र है। यहाँ का सुख क्षणिक, चंचल तथा नश्वर है। सांसारिक अनुभवों का कुछ मूल्य नहीं, केवल ईश्वर सत्य है।

आपके पास सांसारिक धन कितना ही क्यों न हो, वह सब आध्यात्मिकता के बिना मूल्यहीन है। आपको आत्मा में स्थित होना पड़ेगा, जीवन को आध्यात्मिक बनाना होगा। ईसा मसीह कहते हैं, आप ईश्वर का राज्य खोजिए और उनसे मांगिये धर्मपरायणता, अन्य पदार्थ तो स्वत: ही मिल जायेंगे। आध्यात्मिक जीवन ही मूल्यवान् है। यह अखंड, पूर्ण तथा स्वाधीन है। यह ज्ञान से परिपूर्ण तथा आनंदमय है। यह अपरिवर्तनशील, सर्वव्यापक तथा तुष्टि-पुष्टि पूर्ण है।

आध्यात्मिक जीवन को अपनाइये, आप शुद्ध तथा स्वतंत्र हो जायेंगे। जीवन की सुन्दरता इसी में है कि सत्य की वेदी पर अपनी प्रियातिप्रिय वस्तु की बलि दे दीजिए। सत्य का अनुसरण करना, कठिनाइयों और बाधाओं का धैर्य से निवारण करना ही जीवन है। जीवन का आनंद प्रभु भक्ति तथा अपने अन्तर स्थित भगवान का ध्यान करने में है, आध्यात्मिकता से ही जीवन सार्थक होता और सुन्दर एवं सफल बनता है।

संघर्ष का महत्त्व

आदर्श के लिए संघर्षरत रहना ही जीवन है। पूर्णता तथा अखंडता के लिए सतत् प्रयत्न करना ही जीवन है। जीवन एक संग्राम है, विजय-शृंखला है। संघर्ष द्वारा मनुष्य विकासोन्मुख होता है, कई प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है तथा प्रगति पथ पर आरूढ़ रहता है। बिना संघर्ष तथा संग्राम के जीवन या समाज रह नहीं सकता। यदि आप जीवित रहना चाहते हैं तो संघर्ष का सामना तो करना ही पड़ेगा। संघर्ष रहित जीवन कोई जीवन नहीं है। अपने मन की युद्ध-भूमि पर आन्तरिक शत्रुओं से वीरतापूर्वक संग्राम कीजिये। मन और इन्द्रियों के साथ इस आंतरिक युद्ध में यदि थोड़ी भी विजय मिल जाए तो आपकी मानसिक शक्ति, आत्म-विश्वास तथा धैर्य बढ़ेगा। जितना अधिक संघर्ष रहेगा, उतनी अधिक शोभा मिलेगी।

ईश्वर-साक्षात्कार के लिए कठोर परिश्रम की आवश्यकता है। प्रभु के लिए ही जीने की आदत डालिए। तुच्छ भौतिक जीवन के अनेक कष्टों और कठिनाइयों का साहसपूर्वक सामना करिये। वीर बनिये। परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए धैर्यपूर्वक उद्यम करिये। सच्ची वीरता का प्रमाण न तो पर्वतारोहण में है, न नदी पार करने में, न किसी दुर्ग को बारूद से उड़ा देने में और न ही किसी नगर पर बमबारी करने

में। मानव की वास्तविक वीरता तो अपने मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में है। आप अपनी इन्द्रियों तथा मन के गुलाम कब तक बने रहेंगे? दृढ़ता से काम लीजिए। अपने कुत्सित विचारों का उन्मूलन करिये। यही आपका प्रथम कर्तव्य है।

जीवन एक पाठशाला है

इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि भौतिक स्तर पर जीवन का तिरस्कार करें। प्रकृति भी तो उसी भगवान की लीला दर्शाती है। प्रकृति तथा पुरुष भी अग्नि तथा उष्णता, हिम तथा शीत, पुष्प तथा गंध की तरह अविभाज्य हैं। ब्रह्म और माया भी एक हैं, अविभाज्य हैं। भौतिक जीवन ही नित्य जीवन की आधारशिला है। जीवन की बड़ी पाठशाला में ही हमें चरित्र निर्माण एवं दिव्यता प्रकाशन हेतु अनेक शिक्षाप्रद पाठ पढ़ने को मिलते हैं। इस विशाल विद्यालय में प्रत्येक कष्टमयी, वेदनामयी घटना द्वारा हमें अमूल्य उपदेश मिलते हैं। इस प्रकार भौतिक जीवन ही पूर्णता प्राप्त करने की सीढ़ी है।

जगत् ही सबसे बड़ा गुरु है। प्रत्येक पदार्थ से ज्ञान प्राप्त होता है। प्रत्येक अनुभव समझ प्रदान करता है। दिव्य गुणों का अर्जन भी जगत् की सहायता से होता है। करुणा, क्षमा, सहिष्णुता, उदारता, विश्व प्रेम, धीरता, दृढ़ संकल्प तथा महानता जैसे गुणों की प्राप्ति इसी जीवन द्वारा हो सकती है।

दिव्यत्व द्वारा दानवी स्वभाव से लड़ने के लिए जगत् एक रंगशाला है। गीता तथा योग-वाशिष्ठ का यही सार है कि संसार में रहकर ही आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना है। आप संसार में रहिए, पर संसार आपके अंदर नहीं रहना चाहिए। संसार

में कमलवत् रहिए। आसुरी सम्पदा, अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, स्वार्थ, घृणा तथा ईर्ष्या का त्याग कीजिए। दैवी सम्पदा दृढ़ता से अपनाइये। मानसिक त्याग तथा आत्म-समर्पण का जीवनयापन कीजिए।

सफलता का रहस्य

सादे तथा विनीत ढंग से जीवनयापन कीजिए। जीने के लिए खाइये, खाने के लिए नहीं जीना है। ईर्ष्या किसी के प्रति नहीं होनी चाहिए। जीवन को कलंकित नहीं कीजिये। असत्य का त्याग कीजिए। किसी को धोखे में मत रखिये। द्वेष भी किसी से नहीं करना है। प्रसन्न और शान्त रहने का यही रहस्य है।

धर्मपरायणता ही मानव जीवन का सिद्धान्त है। सदाचार ही जीवन है, अत: धर्मपरायण बनिये। सद्गुण-विहीन मनुष्य मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है।

निष्काम सेवा ही जीवन का सार है। विश्व-प्रेम ही जीवन वृत्ति है। यदि आप मानव मात्र से प्रेम नहीं करते अथवा सेवा नहीं करते, तो जीवन का सदुपयोग कहाँ हुआ? सच्चे जीवन की आधारशिला प्रभु प्रेम और मानव सेवा है। परोपकार में अपना जीवन बिताइये।

सन्तों के जीवन चरित्र का अध्ययन करिये, हाथों को दान देने की आदत डालिये। वाणी में मधुरता लाइये। समदर्शिता अपनाइये तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण रखिये, तभी जीवन धन्य बनेगा।

सेवा करिये, प्रेम बढ़ाइये, दानशीलता का अभ्यास कीजिए, शुद्धता अपनाइये, ध्यानाभ्यास कीजिए, अनंत आनंद की प्राप्ति होगी, शाश्वत सम्पत्ति मिलेगी, प्रभु की प्राप्ति होगी। आपका जीवन शक्तिशाली, स्वतंत्र, स्वस्थ, प्रसन्न, सूक्ष्म तथा शान्त बन जायेगा। जो भी आपके सम्पर्क में आयेगा, वह भी प्रेरणा प्राप्त करेगा और धन्य हो जायेगा।

जीवन को नित्यानंद का स्रोत बनाइये। सत्य, तप तथा त्याग द्वारा आनंद प्राप्त करिये। प्रत्येक दिन को अंतिम दिन समझकर इसका प्रत्येक क्षण प्रार्थना, ध्यान और सेवा में व्यतीत कीजिये। जीवन का अखण्ड यज्ञ प्रभु को अर्पण होता रहे। सदा वर्तमान की चिन्ता कीजिये, अतीत को भूल जाइये, भविष्य की आशा मत रखिये।

मानव जीवन का प्रयोजन समझिये। खोज प्रारम्भ कीजिए। यह जीवन भगवान की महान् देन है, प्रत्येक क्षण का पूरा उपयोग कीजिए। सफलता उन्हीं को मिलती है जो साहसपूर्वक उद्यम करते हैं। भीरु के पास सफलता नहीं फटकती।

जीवन की अखण्डता

जीवन के समष्टि रूप पर दृष्टि डालिए। चेतना का आदि स्रोत पूर्ण स्वतंत्र ब्रह्म ही है। सभी प्राणधारियों में वही श्वास ले रहा है। अनेकता में एकता है। सभी

एक ही कुटुम्ब के सदस्य हैं। सभी जीवधारी उसी की रचना हैं। सब प्राणी उसके अंश हैं। पृथक् होने से वे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं। पृथकता मृत्यु है। एकता में ही नित्य जीवन का रहस्य है। विश्व प्रेम अपनाइये। सबको गले लगाइये। दूसरों को सम्मान दीजिए, उन सब बन्धनों को काट डालिए जो एक मानव को दूसरे मानव से पृथक् करते हैं। पशुओं की रक्षा कीजिए, हर जीवन को पवित्र मानिये, तब यह संसार 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' स्वरूप बन जायेगा।

हरी-हरी घास एवं सुकोमल पुष्पों के साथ मिलकर मुस्कुराइये। तितलियों, पक्षियों, हिरणों के साथ मिलकर खेलिए। वृक्षों, झाड़ियों तथा सुन्दर पौधों से हाथ मिलाइये। समीर, इन्द्र- धनुष, नक्षत्रों और चाँद-सूरज से बातें कीजिये। बहती नदियों और समुद्र की तरंगों के साथ भी वार्तालाप कीजिए। गायों, मनुष्यों तथा पेड़ों से मित्रता कीजिए, तभी आपके जीवन को पूर्णता की प्राप्ति होगी। जीवन इतना विशाल, सुन्दर और मूल्यवान् बनेगा कि उसे शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता। जीवन की इस आधारभूत एकता की अनुभूति आपको स्वयं करनी होगी।

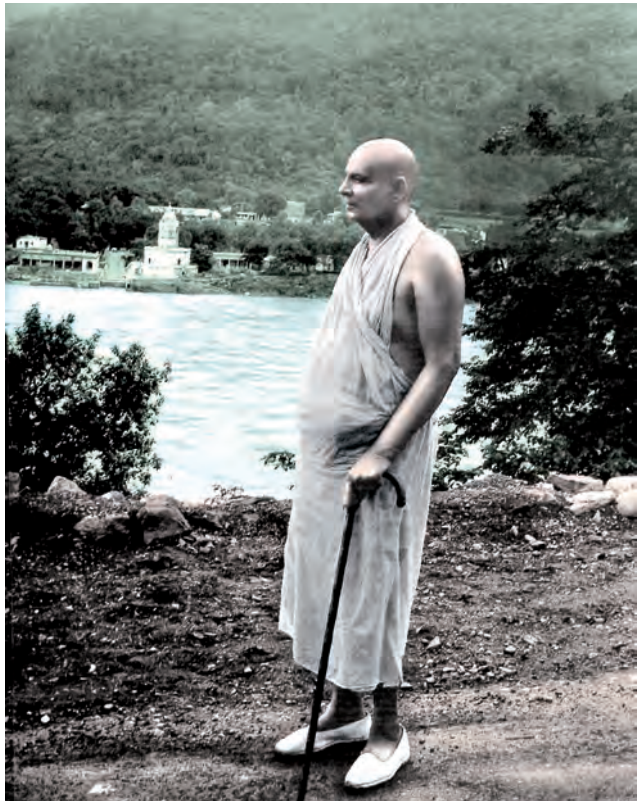

मानव कल्याण के लिए योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग के सम्बन्ध में लोगों की बड़ी अजीब धारणायें हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि सिर्फ संन्यासी ही योगाभ्यास कर सकते हैं, गृहस्थ नहीं, लेकिन यह ख्याल एकदम गलत है। हमारी धार्मिक कथाओं में ऐसे कितने ही गृहस्थों का वर्णन है जो योगी थे, उदाहरण के लिये राजा जनक। फिर कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि योग का मतलब सिर्फ कुछ आसन और प्राणायाम भर होता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि योग में और भी अधिक बातें शामिल हैं। गीता में भी ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र का उल्लेख आया है। वे दोनों एक-दूसरे से मिले-जुले हैं। पहला सिद्धान्त है, दूसरा व्यवहार।

योग व्यावहारिक है। याद रहे कि भगवान श्री कृष्ण ने योग का ज्ञान अर्जुन को युद्ध के मैदान में दिया था। यह ज्ञान उन्होंने किसी संन्यासी को नहीं, बल्कि उसे दिया था जो पूरी तरह संसार का व्यक्ति था—एक योद्धा जो इस उलझन में पड़ गया था कि क्या सही है और क्या गलत। इस तरह आप देखेंगे कि योग का अर्थ सिर्फ कुछ आसन और प्राणायाम भर नहीं, यद्यपि इनका भी महत्त्व है। दूसरी बात यह कि योग सिर्फ संन्यासियों के लिए नहीं है। इसका महत्त्व तो उन संसारी व्यक्तियों के लिए और भी अधिक है जो जीवन की समस्याओं तथा वास्तविकताओं से घिरे हुए हैं।

योग के विभिन्न अंग हैं, जो आपको अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में मदद कर सकते हैं। योग एक मानसिक उपचार है। आसन, प्राणायाम, अजपा जप, नाद योग एवं अन्य अभ्यासों से मन में संचित संस्कार-राशि से आप मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इन संस्कारों से ज्योंही आप मुक्त हुए त्योंही आपके मन के विकार, संघर्ष, मान्यताएँ तथा पस्तहिम्मती आदि मानसिक कमजोरियाँ भी आपसे दूर हुईं। देखा जाता है कि अत्यन्त सम्पन्न तथा धनी घर के बच्चे छोटी-छोटी चीजों की चोरी करते हैं। घर में बने हुये एक-से-एक अच्छे-अच्छे पकवानों को छोड़कर होटल तथा खोन्चेवालों की सड़ी-गली चीजों को खाने दौड़ते हैं। इसी किस्म के अन्य कितने ही उदाहरण हमें दैनिक जीवन में मिल जायेंगे। इन समस्याओं का स्रोत मनोवैज्ञानिक है। मनुष्य अत्यधिक देहाध्यास के कारण इस किस्म की अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं के चंगुल में फंस जाता है। यद्यपि उन मनोविकारों का कोई आधार नहीं होता फिर भी वह उनसे त्रस्त रहता है। उदाहरण के लिये भय की समस्या को ही लें। मृत्यु का भय, बीमारी का भय, आर्थिक नुकसान का भय, इसका भय, उसका भय—यद्यपि इनका कोई वास्तविक आधार नहीं होता, फिर

भी मनुष्य इनसे ग्रस्त रहता है तथा अनेक प्रकार की भयोत्पादक सम्भावनाओं की कल्पना करके उनके लिये चिन्ता करता रहता है।

अगर आप अपने व्यक्तित्व को बदलना चाहते हैं, अगर आप इन मनोविकारों को हटाना चाहते हैं, तो योग ही एकमात्र रास्ता है। मेरी बात का विश्वास करें, मुक्ति का अर्थ दुनिया को छोड़कर एकान्त में जाना नहीं है। मुक्ति का अर्थ है, जहाँ आप हैं वहाँ दृढ़तापूर्वक अड़े रहना तथा अपनी कमजोरियों को जीतना। मुक्ति का अर्थ है, उन बंधनों को तोड़ना जिनसे आप बंधे हैं। इसका अर्थ आकाश के पार किसी अनजान लोक में चले जाना नहीं, जैसी कई लोग कल्पना करते हैं। इसका सम्बन्ध इसी दुनिया से है। यह हमारी हाल की, अभी की समस्या है। अगर मनुष्य अपनी उन वासनाओं को नहीं हटा सकता जो उसे बंधन में डालती हैं, अगर वह अपने व्यक्तित्व की उन कमजोरियों को दूर नहीं कर सकता जो उसके अचेतन मन में दबी हुई हैं, तो फिर वह सुख, आनन्द तथा मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है? योग उसे उन बंधनों से मुक्त करेगा जो उसे बांधते हैं। योग के द्वारा वह अपने अचेतन मन की गहराई तक पहुँच सकता है तथा वहाँ से उन संस्कारों की राशि को समाप्त कर सकता है जो उसके व्यक्तित्व के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुँचाते हैं। जब ये संस्कार समाप्त हो जायेंगे तब उसके अन्दर छिपी हुई शक्ति तथा ज्ञान प्रकट होगा।

आप लोगों ने कुण्डलिनी योग के बारे में सुना होगा। उसके बारे में भी बहुत अधिक गलतफहमी फैली हुई है। लोग समझते हैं कि अगर वे इस योग का अभ्यास करेंगे तो उनकी मृत्यु हो जायेगी या वे पागल हो जायेंगे। कुण्डलिनी मनुष्य के अन्दर, मूलाधार में छिपी हुई महान् शक्ति है। मनुष्य शरीर के भीतर विभिन्न आन्तरिक चक्र हैं। अगर ये चक्र खुल जाएँ तथा कार्य करने लगें तो मनुष्य को वह शक्ति प्राप्त हो सकती है जो इन चक्रों में प्रसुप्त है। सबसे महान् शक्ति सिर में है। जब मूलाधार में सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति जागकर सुषुम्ना नाड़ी के जरिये होते हुये इस केन्द्र में पहुँचती है, तब एक महान् शक्ति का उदय होता है। इस शक्ति को जगाने के लिये विभिन्न प्रकार के यौगिक अभ्यास हैं, जैसे अपनी चेतना को विभिन्न चक्रों में घुमाना, गहरा ध्यान, आदि। कुण्डलिनी को जगाना कोई सरल कार्य नहीं है, इसके लिये लम्बे तथा नियमित अभ्यास की आवश्यकता है।

राजस्थान के एक अनुसंधान केन्द्र में मनुष्यों पर ध्यान के असर को जाँचने के लिये प्रयोग किये गये, जिसका यह नतीजा देखा गया कि ध्यान के अभ्यास द्वारा हर प्रकार के शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक तनाव दूर हो जाते हैं। ध्यान के अभ्यास के समय रक्तचाप भी नीचे आ जाता है। जो लोग ध्यान का अभ्यास करते हैं वे न केवल तनावों से मुक्ति पाते हैं बल्कि नई शक्ति भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार आप देखेंगे कि योग द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व को विकसित किया जा

सकता है। अपने मन के तनावों तथा विकारों से मुक्ति पाकर योग का साधक अपने व्यक्तित्व को अधिक विकसित कर सकता है। इस प्रकार योग आधुनिक मानव की अत्यधिक मदद कर सकता है।

आजकल लोग डॉक्टरों, बीमारियों तथा दवाइयों के बारे में इतनी जानकारी रखते हैं कि हमेशा इन्हीं बातों पर सोच-विचार करते रहने के कारण उनका मन बीमारियों के विचारों से भर जाता है। परिणामस्वरूप दिनो-दिन वे कमजोर होते जा रहे हैं। लोगों को चाहिये कि अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये वे योग का सहारा लें। आखिरी विश्लेषण में बीमारी का कारण तथा उसकी दवा व्यक्तिगत होती है।

एक अत्याधुनिक कमरा, अति सुन्दर रूप से सजाया गया हो, लेकिन उसके किसी कोने में अगर कोई सड़ी हुई चीज पड़ी हो तो कमरे की सुन्दरता के बावजूद भी कोई व्यक्ति वहाँ जाना नहीं चाहेगा। यही हाल मनुष्य के व्यक्तित्व का भी है। अगर तुम्हारे अन्दर कहीं मैल हो तो लोग तुम से दूर ही रहेंगे। योग वह झाड़ू है जो तुम्हारे अन्दर के सारे मलों को पूर्णरूप से साफ कर देगा। हमारा दैनिक जीवन द्वन्द्वों से भरपूर है। पति-पत्नी में द्वन्द्व, मालिक-नौकर में द्वन्द्व, दोस्त-दोस्त में द्वन्द्व, इस तरह कई प्रकार के द्वन्द्वों से हम घिरे हुये हैं। इन्हें कोई नहीं चाहता, लेकिन फिर भी वे रहते ही हैं तथा हमारे जीवन को कष्टमय बनाते हैं। इनका कारण है हमारे संचित संस्कार। आधुनिक मनोविज्ञान पुनर्जन्म तथा कर्म पर विश्वास नहीं करता, लेकिन योग इन पर विश्वास करता है। आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर

में जाती है तथा इस अनन्त क्रम में कई प्रकार के संस्कार अर्जित करती है। उसके कर्म इन्हीं संस्कारों से प्रेरित होते हैं, और इसीलिये कभी-कभी हम यह समझ पाने में असमर्थ रहते हैं कि किसी ने अमुक कार्य, अमुक ढंग से क्यों किया।

फर्ज कीजिये कि कोई व्यक्ति किसी गहरे मनोविकार से ग्रसित है। ऐसी हालत में हम क्या करते हैं? हम उसे किसी मनोवैज्ञानिक के पास भेज देते हैं जो उसे कई बार गहरे ध्यान की स्थिति में ले जाता है और इस प्रकार के कुछ प्रयोग के बाद मरीज की हालत सुधरने लगती है। योग भी यही करता है। जब मैंने योगाभ्यास शुरू किया तो कुछ समय के बाद एक ऐसा समय आया जब मुझे अपने व्यक्तित्व का अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त होने लगा।

हर मनुष्य जीवन में शान्ति और संतुलन चाहता है, और सच तो यह है कि ईश्वर-साक्षात्कार भी आप तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब आपके अन्दर शान्ति तथा सन्तुलन आ जाए। एक बार आपने शान्ति को प्राप्त कर लिया कि द्वन्द्व, विकार, पस्तहिम्मती, सब आपसे दूर हुए। और तब आप अपने मन के स्वामी बने और ज्योंही आप अपने मन के स्वामी बने, आप ईश्वर को जान सकेंगे। इस तरह मन का साक्षात्कार और ईश्वर-साक्षात्कार, ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इसलिये सर्वप्रथम अपने मन को समझने की कोशिश कीजिये। एक योगी अपने मन की कभी उपेक्षा नहीं करता। वह अपनी आन्तरिक चेतना को मन से संयुक्त करता है। वह अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से अलग करता है तथा उन्हें अपनी चेतना, अपनी आत्मा, अपने स्वरूप से संयुक्त करता है। यही योग है। जब आपका मन अंतर्मुख होता है और ध्यान करने लगता है, तब आपको असीम शान्ति और परमानन्द प्राप्त होता है। आप अपनी आत्मा से एक हो जाते हैं। यह अपनी आत्मा का ध्यान हुआ। यह स्थिति प्राप्त करने के कई उपाय हैं, उदाहरण के लिये—नादयोग, किसी आंतरिक चक्र पर ध्यान, त्राटक, 'मैं कौन हूँ?' इस प्रश्न पर ध्यान इत्यादि। यह सब योग है।

कुछ लोग कहते हैं कि योग बड़ा गूढ़ है और उनकी समझ में नहीं आता, इसलिए उन्हें भक्ति मार्ग पसन्द है। पर वह भी योग है। संत-महात्माओं ने यह निर्धारित किया है कि भक्ति, कर्म और ज्ञान—ये सभी योग हैं। राजयोग इन सभी के लिये उसी प्रकार जरूरी है जैसे भोजन के लिये नमक। अन्त में ये सभी योग राजयोग में जाकर मिल जाते हैं। बिना राजयोग के आप मन की भाग-दौड़ को काबू नहीं कर सकते। कर्मयोग कठिन है, क्योंकि इसमें आपको अपने दैनिक जीवन में सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय—सबको समान समझते हुये कार्य करना पड़ता है। ज्ञानयोग उससे सरल है और भक्ति योग का अभ्यास इन सबसे सरल है।

इस तरह आप देखेंगे कि योग की हमारी शास्त्रीय परिभाषा बड़ी विशद है। योग का अभ्यास एक नितान्त निराशावादी को अत्यन्त आशावादी बना देता है, मनुष्य अपने आप में बादशाह बन जाता है। योग-विज्ञान अब मानवता से अलग

नहीं रखा जा सकता। हमें उसका प्रचार करना है। वह दु:खी तथा त्रसित मानवता का भारी उपकार कर सकता है।

श्री रामकृष्ण परमहंस एक महान् भक्तियोगी थे। भक्तियोग के अभ्यास से मनुष्य की अतिरिक्त भावनाएँ, असंतुलित तथा अपूर्ण इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। मनुष्य एक भावुक प्राणी है। अपनी भावनाओं को वह अपनी स्त्री, बच्चे, सम्बन्धी, मित्र आदि के प्रेम में खपाने की कोशिश करते रहता है, लेकिन सांसारिक प्रेम उसे संतोष नहीं दे सकता, बल्कि उल्टे मानसिक असंतोष पैदा करता है। वह अपनी भावनाओं का स्वामी न होकर, उनका दास बन जाता है। इसके फलस्वरूप कई प्रकार की सामाजिक अव्यवस्थाओं तथा बुराइयों का जन्म होता है। भक्तियोग आपकी सभी अतिरिक्त भावनाओं को अपने में आत्मसात् कर लेता है। वह आपकी सांसारिक भावनाओं को ईश्वरीय भावनाओं में बदल देता है। लेकिन भक्तियोग के साथ-साथ ज्ञान तथा कर्मयोग का भी अभ्यास जरूरी है। तभी आपका व्यक्तित्व संतुलित हो सकेगा, आपका योग पूर्णयोग बन सकेगा। पूर्णयोग में स्थित होकर तब आप ध्यान का अभ्यास करें और धीरे-धीरे समाधि प्राप्त करें। इसके लिये आपको संन्यास लेने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ आप हैं वहीं रहें तथा अभ्यास करें।

व्यावहारिकता की दृष्टि से आपको सिर्फ दो प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना है। प्रथम, क्या योग आपको अपने रोजमर्रे के जीवन को सुधारने में मदद कर सकता है? दूसरा, क्या व्यक्ति योग के अभ्यास द्वारा अपने व्यक्तित्व के दोषों को दूर कर सकता है? आप अनुभव करेंगे कि इन दोनों प्रश्नों का उत्तर है—हाँ।

—1 नवम्बर 1964, प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन, मुंगेर

एक बेहतर विश्व की ओर

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी कहा करते थे, 'जब चारों ओर आग लगी हो और आग की लपटें सब कुछ भस्म कर रही हों तो अपने आपको किसी वातानुकूलित कमरे में बंद करके यह सोचना कि इस ठण्ढे कमरे में मैं सुरक्षित हूँ, महामूर्खता है। अंत में आग तुम्हारे कमरे तक पहुँचकर उसे भी जला डालेगी।'

हमें अपने जीवन में सकारात्मकता और अच्छाई का पोषण करना है, अन्यथा हमें ऐसा वातावरण बनाने के लिए जिम्मेवार ठहराया जाएगा जिसमें मानव संस्कृति के उच्चतम मूल्यों का, उत्तमता पाने के प्रयासों का ह्रास होता गया। आज उत्तमता की प्राप्ति का तात्पर्य दूसरों को गिराकर स्वयं ऊपर उठना हो गया है, जबकि हमारे बाप-दादा की पीढ़ी तक इसका मतलब होता था दूसरों को भी उत्तमता के लक्ष्य की ओर साथ लेकर चलना।

एक बार एक यात्री अफ्रीका के बीहड़ जंगलों में किसी सुदूर स्थान तक गया। वहाँ एक मैदान में उसने कुछ बच्चों को खेलते देखा। उसने सोचा कि इन गरीब बच्चों को खाने के लिए कुछ दिया जाए। उसने मैदान के एक छोर पर फलों की टोकरी रख दी और बच्चों से कहा, 'देखो, वहाँ मैंने कुछ फल रखे हैं। तुम दौड़कर वहाँ पहुँचो और जी भरकर खाओ।' बच्चे फलों की ओर दौड़ने लगे। आधे रास्ते में एक छोटा बच्चा लड़खड़ाकर गिर गया और रोने लगा। बाकी बच्चे दौड़ ही रहे थे, कुछ लक्ष्य तक पहुँचने वाले थे। पर उस छोटे बच्चे का रोना सुनकर सब रुक गए। कुछ तो फलों की टोकरी तक पहुँच चुके थे, वे चाहते तो जो जी में आता, उठाकर खा लेते। लेकिन वे सभी रुक गए और उस गिरे हुए बच्चे के पास लौटकर उसे कंधों पर उठा लिया। फिर एकजुट होकर वे फलों की ओर बढ़े।

साथ मिलने और साथ चलने का यही मतलब है। एक-दूसरे के विकास में सहारा देने का यही अभिप्राय है। यहाँ आत्मभाव से प्रेरित होकर सभी एक-दूसरे की सहायता करते हैं और व्यक्तिगत भोग की कोई लालसा नहीं होती। व्यक्तिगत भोग अपनी जगह मान्य है, मगर उसके पीछे हमें बेकाबू नहीं होना चाहिए, बल्कि सजगता और संयम से काम लेना चाहिए।

यौगिक साधना एवं जीवनशैली के सन्दर्भ में भी अब इस तरह की समझ और विचारधारा विकसित होनी चाहिए। हमें केवल यह नहीं देखना है कि योग को हम कैसे बेहतर सीख सकते हैं, बेहतर कर सकते हैं या बेहतर सिखा सकते हैं, बल्कि अब संस्कृति के ऐसे पहलुओं पर भी ध्यान देना है जिन्हें स्वयं ग्रहण करके और फिर दूसरों में प्रसारित करके अंतत: भावी पीढ़ियों को हस्तान्तरित कर सकते हैं।

जिसका भी अध्यात्म के प्रति रुझान है, उसे इतना योगदान तो करना ही चाहिए ताकि मानव समाज का उत्थान और कल्याण हो सके।

अच्छाई के प्रति कटिबद्धता

बिहार योग विद्यालय में योग का दूसरा चरण आरम्भ करने के साथ हम स्वामी सत्यानन्द जी के योग मिशन के मौलिक संस्कारों के प्रति भी समर्पित हैं। समर्पण आखिर है क्या? मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। स्वामी सत्यानन्द जी और स्वामी शिवानन्द जी ने भी अपने जीवन में स्वयं को समर्पित किया। रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, ईसा मसीह और हज़रत मुहम्मद जैसी सभी आध्यात्मिक विभूतियों ने अपने जीवन को किसी-न-किसी लक्ष्य के प्रति समर्पित किया। जो लोग किसी लक्ष्य के प्रति समर्पित और कटिबद्ध होते हैं, वही किसी मुकाम पर पहुँचते हैं। जिन्होंने कभी अपने आपको समर्पित नहीं किया, वे जीवनभर घाट-घाट का पानी पीते रहे हैं। वे कई चीजों के बारे में जानते हैं, लेकिन किसी चीज में उनकी महारत नहीं होती। उनके जीवन में ऐसा कुछ नहीं जिसे उपलब्धि कहा जा सके।

लोग प्राय: नए अभ्यासों, विधियों, पद्धतियों और प्रणालियों की खोज में लगे रहते हैं, लेकिन वे कभी अपने आपको किसी एक अनुभव में स्थिर और स्थाई होने का अवसर नहीं देते। हर कोई चाहता है कि मैं योग के बाजार में आए नवीनतम अभ्यास या विधि को सीखूँ, लेकिन उसे सीख लेने के बाद क्या आप उस शिक्षा को एक ऐसी अनुभूति में परिणत होने देते हैं जो आपके जीवन का स्थाई अंग बन जाए? संभवत: नहीं।

आप हमेशा नई चीजें खोजते रहते हैं, पर अच्छाई के उन अनुभवों में टिकना नहीं चाहते जिन्हें आपने जीवन में बार-बार पाया है। अगर आपकी कीमती अँगूठी अँगुली से फिसलकर टॉयलेट में गिर जाती है तो आप क्या करते हैं? उसे फ्लश कर देते हैं या उसे निकालकर और धोकर फिर से पहन लेते हैं? अगर आप किसी चीज को अच्छा मानते हैं, उसकी खूबसूरती और कीमत की कद्र करते हैं तो बेशक वह कचरे में गिर जाए, मगर आप उसपर यह ठप्पा कभी नहीं लगाते कि यह चीज कचरे में गिर चुकी है। आप उसे कचरे से निकालकर और साफ-सुथरा करके वापिस उसी भाव से देखते हैं जैसे पहले देखा करते थे। ऐसा आप जिन्दगी की हर कीमती चीज के साथ करते हो।

अफसोस इस बात का है कि आपसी संबंधों के मामले में आप यह दृष्टिकोण भूल जाते हो, बल्कि उसके स्थान पर दोष-दृष्टि अपना लेते हो। अपने किसी प्रियजन की एक छोटी-सी भूल पर आप उसे बार-बार यह अहसास दिलाते रहते हो कि 'तुमने मेरे साथ एक बार ऐसा किया था!' लेकिन उसके साथ खुशी और खूबसूरती भरे जो यादगार पल बिताए थे, उन्हें पलटकर भी नहीं देखते! 365 दिनों में हुई एक भूल आपको जीवनभर याद रहती है, पर 364 दिनों की सारी अच्छाई आप कूड़ेदान में फेंक देते हो! मानव मन का ऐसा ही स्वभाव है, और हमें इसी मन को सम्भालना है। अपना अवलोकन और विश्लेषण करो। देखो कब आपका ध्यान दोषों पर जाता है और आप सुन्दरता तथा सकारात्मकता की अवहेलना कर देते हो। यह हर किसी के व्यवहार में हर पल घटित होता है। जब लोग सौन्दर्य से संबंध जोड़ने के बजाय दोषों और कमियों को उजागर करते हैं तब उनके रिश्ते, उनकी समझदारी, उनके व्यवहार, सब बिगड़ जाते हैं।

जहाँ भौतिक वस्तुओं का सवाल है, वहाँ तो आप अपनी पसंदीदा चीजों की केवल सुन्दरता और उपयोगिता देखते हो, उन्हें हर कीमत पर संजोकर रखते हो। लेकिन अपने रिश्तों और संबंधों के साथ ऐसा नहीं करते। यह जीवन की सुन्दरता के प्रति लापरवाही और नासमझी दर्शाता है। सुन्दरता की आपकी परिभाषा बड़ी सीमित है। आपके लिए वही सुन्दर है जो मन को अच्छा लगे, जबकि सच्चाई तो यह है कि सृष्टि की हर चीज में अच्छाई और बुराई, सुन्दरता और कुरूपता, गुण और दोष दोनों है– *जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।* यही प्रकृति का नियम है। सिक्के के दो पहलू होने ही हैं। प्रकृति रूपी सिक्के का 'चित' आध्यात्मिकता तो 'पट' भौतिकता है। आध्यात्मिकता कहती है कि अच्छाई से जुड़ो। क्या आपका मन आपको अच्छाई से जुड़ने देता है? अगर आप स्वयं को अच्छाई से जुड़ने के लिए निरंतर निर्देशित कर सकें तो यह समर्पण का, कटिबद्धता का लक्षण है। मैंने अपने जीवन में इस समर्पण और कटिबद्धता को अपनाया है, जीया है। सही ढंग से जीवन जीने का रहस्य यही है।

अगर योग के मौलिक संस्कारों को स्पष्ट समझ के साथ अपनाया जाए तो आपको जीवन की सुन्दरता की खोज में मदद मिलेगी। आपका दृष्टिकोण, आपकी विचारधाराएँ, आपकी मान्यताएँ बदल जाएँगी, क्योंकि आप अपने मन में हमेशा सकारात्मक विचारों को प्राथमिकता देंगे। इस तरह मन की कई कमियों और कमजोरियों से बचा जा सकता है।

आप विचारों को सुनते अवश्य हैं, लेकिन उन्हें अच्छी तरह ग्रहण नहीं करते। आप उनके प्रति निष्ठावान् और कटिबद्ध नहीं होते। गुरुओं द्वारा कही अच्छी बातें, किताबों में छपी अच्छी शिक्षाएँ आपके लिए आखिर कितना महत्त्व रखती हैं? उनमें से कितनी अच्छी बातों को आपने अपने जीवन में अपनाया है? अगर समय सचमुच कीमती है तो उसका सही उपयोग कीजिए। सही क्या है, इसे जानिए और फिर सही कर्म और व्यवहार कीजिये। सबकी जीवन-यात्रा का ध्येय यही होना चाहिए कि बाह्य जीवन में कार्य-कौशल का विकास हो और आन्तरिक जीवन में समझ और ज्ञान का।

मैं हमेशा से मानता आया हूँ कि जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण सद्गुण न तो प्रेम है, न ही करुणा, बल्कि सही समझ है। अगर समझ सही है तो फिर आपके पास सब कुछ है, और अगर समझ नहीं है तो कुछ भी नहीं है। क्या आज तक किसी ने समझने की कोशिश की है, न केवल अपने आपको, बल्कि दूसरों को भी?

नए अध्याय का संकल्प

बिहार योग विद्यालय के पहले अध्याय को जिन संकल्पों ने निर्देशित किया उन्हें आप भली-भाँति जानते हैं। इनके तहत योग का हर देश, धर्म, जाति, संस्कृति, समाज और समुदाय में प्रचार किया गया, योग का व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षण प्रदान किया गया और योग के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, शैक्षणिक और सामाजिक पक्षों पर व्यापक अनुसंधान किया गया। यद्यपि अब प्रथम अध्याय के ये सभी संकल्प साकार हो गए हैं, फिर भी इन क्षेत्रों में विकास और परिष्कार जारी रहेगा।

अब योग के दूसरे दौर में जो संकल्प रहेंगे, वे हमे योग के वास्तविक ज्ञान एवं लक्ष्यों से, योग की विद्या से और योग की जीवनशैली से जुड़ने का अवसर प्रदान करेंगे। इनका उद्देश्य समाज में एक सकारात्मक, रचनात्मक, आनन्दमय, प्रेरक और सहयोगपूर्ण वातावरण का निर्माण होगा। इसके लिए आवश्यक है कि हम इन शिक्षाओं को विवेक, समझ, श्रद्धा और विश्वास के साथ ग्रहण तथा आत्मसात् करें; अपने कर्मों और व्यवहार की जिम्मेवारी लें; योग के नियमों और अनुशासनों का पालन करने का हर संभव प्रयास करें; सकारात्मक आध्यात्मिक विकास के लिए पुरुषार्थ करें और स्वयं को जीवन के सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् पक्ष से जोड़ें।

यही वह संकल्प है जिसने योग आंदोलन को जन्म दिया और उसे प्रेरित करता रहा। स्वामी सत्यानन्द जी ने मुंगेर के लिए जो कुछ सोचा वह इस संकल्प में निहित है। बिहार योग विद्यालय श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की यौगिक संतान है। यह उनके संकल्प, प्रेरणा, समर्पण और बलिदान का जीवन्त प्रतीक है। हमें उनकी इसी प्रेरणा और संकल्प से जुड़ना है।

आखिर स्वामी सत्यानन्द जी ने किस प्रयोजन से हमें योग में दीक्षित किया? मनमर्जी करने के लिए तो नहीं, बल्कि यौगिक अनुभवों को अपने जीवन में आत्मसात् और अभिव्यक्त करने के लिए। भले ही लोगों का ध्यान आसन, प्राणायाम, योग निद्रा तथा प्रत्याहार एवं धारणा के पाँच-छः अभ्यासों पर केन्द्रित रहा हो, लेकिन जो भी आए, वे एक परम्परा एवं मिशन के अंग थे, और उसी द्वारा प्रेरित और मार्गदर्शित थे। इसलिए बिहार योग विद्यालय के इस दूसरे अध्याय में यह महत्त्वपूर्ण है कि हम स्वामी सत्यानन्द जी के यौगिक संकल्प और मिशन से जुड़ें।

नए अध्याय का संकल्प केवल एक चीज की ओर इंगित करता है—हमारे भीतर जो सकारात्मकता है, हमारे अन्दर जो सुन्दरता है, उससे जुड़ना। बाहर से कोई चीज लाने की जरूरत नहीं। जो कुछ है सब भीतर है, जिसे सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के रूप में अवश्य अनुभव किया जा सकता है। अगर आप जीवन की अच्छाई से जुड़े रहने की प्रेरणा को बनाए रख सकते हैं तो आप यौगिक अनुभव के द्वितीय अध्याय के सृजन में अवश्य सहभागी बन सकते हैं। लेकिन अगर आप सोचते हैं कि अपने सकारात्मक पक्ष से जुड़ना बहुत कठिन काम है तो फिर उच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों की अपेक्षा भी मत रखिये।

अब लक्ष्य यही है कि अच्छाई और सुन्दरता को सबसे सरल, सहज और स्वाभाविक स्वरूप में विकसित किया जाए। लेकिन यह एक व्यक्तिगत प्रयास नहीं है। संकल्पित और समर्पित लोगों के समूह के संयुक्त प्रयास से ही यह स्वप्न साकार हो सकता है। आपमें से जो भी इस अध्याय के विकास में समर्पित होना चाहते हैं, उनका स्वागत है। मेरी यही प्रार्थना कि हम सब को जीवन में अच्छाई और सौन्दर्य के अन्वेषण के मार्ग पर चलने की समझ और शक्ति प्राप्त हो।

—'योग— अथ द्वितीयोऽध्यायः' से उद्धृत

ध्यान का मन पर प्रभाव

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दुनियाभर में हजारों-लाखों लोग योग से अत्यधिक लाभ उठा रहे हैं और इसी वजह से यह विद्या दुनिया में फूल की सुगंध की तरह फैलती जा रही है। धर्म की दिवारों के परे और भूगोल की सीमाओं के भी परे योग ने दूर-दूर तक लोगों को एक नया संदेश दिया है। जिस तरह से आप लोग यहाँ पर बैठे हैं, उसी तरह से पूरी दुनिया में भी लोग बहुत बड़ी तादाद में हैं जो योग के प्रति बहुत आस्था और प्रेम रखते हैं। योग के प्रयोगों से उन्हें बहुत फायदा भी हुआ है।

शुरू-शुरू में लोग समझते थे कि योग एक धर्म या सम्प्रदाय है। यह भी समझते थे कि योग कोई जादू-टोना है। किन्तु अब जितने भी समझदार लोग हैं वे समझ गये हैं कि योग एक विज्ञान है, मात्र मजहब या धर्म नहीं। विज्ञान उसे कहते हैं जिसकी हर बात को हम प्रयोगों द्वारा परख सकते हैं। योग ऐसा ही एक सिद्धान्त है, एक वैज्ञानिक पद्धति है। जब हम योग को विज्ञान कहते हैं तो हम लोगों से यह कहते हैं कि तुम इसे जाँचो, इसे परखो। योग के द्वारा दुनिया में लोगों को लाभ हुआ है, किन्तु वे सिद्ध प्रयोग नहीं हैं। विज्ञान में प्रयोग होने चाहिए और उसकी प्रणाली बननी चाहिए। इसी वजह से हमने मुंगेर में एक छोटा-सा आश्रम जो खोला, वहाँ से हमने भारत और भारत से बाहर के लोगों को प्रेरणा दी और उनसे कहा कि तुम पता लगाओ कि योग के अभ्यासों से शरीर और मन में क्या होता है। हमारी बातों से दुनिया वालों का ध्यान थोड़ा उस तरफ गया।

योग पर अनुसंधान

सन् 1968 में मैंने दुनिया के उन सभी देशों में जहाँ एक भारतीय नागरिक जा सकता है, उनका दौरा किया और वहाँ मैंने आज के जाने-माने वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों और प्रोफेसरों से बातें कीं। उनमें से कुछ लोगों ने तो मेरी बातों का मजाक उड़ाया, मगर कुछ लोगों ने मेरी बातों पर थोड़ा-सा ध्यान दिया और इसी के फलस्वरूप कई देशों में लोग मिलकर अनुसंधान और प्रयोग करने लगे। फिर भारत में भी पटना के डॉक्टर श्री निवास के तत्त्वावधान में एक प्रयोग करवाया, जिसकी एक झलक मैं अभी आप लोगों को दूँगा।

हम लोगों ने भारत सरकार से सहायता लेकर 'दिल की बीमारियों में योगासनों का प्रभाव' विषय पर एक शोध कार्यक्रम तैयार किया। इस अनुसंधान पर काम पाँच साल तक चला और एक हजार से अधिक हृदय-रोगियों को योग अभ्यास सिखलाये गये। योग अभ्यास सिखलाते समय उनके शरीर में जो प्रतिक्रिया हुई,

उनके हृदय में जो परिवर्तन आया, उसके आँकड़े तैयार किये गये, जिससे योग के सकारात्मक प्रभावों की झलक मिली।

इस संबंध में मेरा अपना एक छोटा-सा अनुभव है। मेरे एक शिष्य हैं जो वायु सेना में काम करते हैं और बड़े अधिकारी हैं। यह कई वर्ष पहले की बात है। उन्हें एक बार हल्का-सा दिल का दौरा पड़ गया। उसके बाद वे मेडिकल टेस्ट में फेल हो गये और उनका प्रमोशन रद्द कर दिया गया। जब मुझे मालूम पड़ा तब जो आसन मुझे उचित मालूम पड़ते थे, उन्हें एक शिक्षक द्वारा सिखलाए। उन्होंने उन आसनों का अभ्यास किया। दो साल के बाद उनका प्रमोशन हो गया। उनका जिस समय मेडिकल टेस्ट कराया गया, उन्हें बहुत-सी चीजें करनी पड़ीं। उन्हें जल्दी से 6-7 मंजिल चढ़ना-उतरना पड़ता था। उनके बड़े साहब ने पूछा, तुम कुछ दवाई खाकर आये हो क्या जिससे तुम ये सब चीजें इतनी आसानी से कर पा रहे हो? उन्होंने कहा, 'सर, मैं केवल आसन और प्राणायाम करता हूँ।' साहब बोला, 'आसन और प्राणायाम, यह क्या चीज है?' देश का बड़ा एयरफोर्स अधिकारी कहता है कि आसन-प्राणायाम क्या है, कितने दु:ख की बात है। नौकर या चपरासी कहे, माना जा सकता है, पर ऐसा आदमी जो दुनिया की संस्कृति का अध्ययन कर सकता है, वह अपनी संस्कृति के बारे में अध्ययन नहीं कर सकता क्या?

भारत के एक और बहुत अच्छे डॉक्टर हैं, डॉ. दाँते। वे हृदय रोग के विशेषज्ञ हैं, विशेषकर उच्च रक्तचाप पर। उनसे हमारी कई बार बातें हुईं और बातचीत

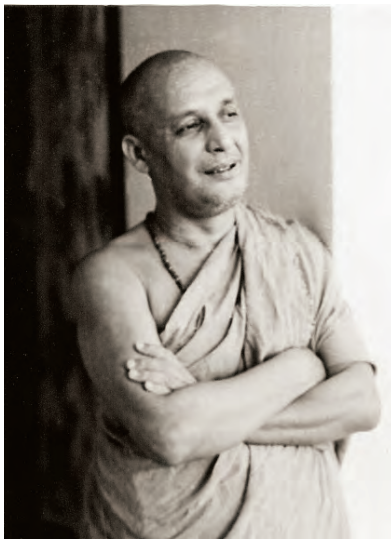

के सिलसिले में हमने उनसे कहा कि आप दो-तीन सौ रक्तचाप के मरीजों को लीजिए और हमारी एक प्रणाली के अनुसार उन्हें योगाभ्यास कराइये। उनके मन में यह बात आ गई और यह काम जल्द पूरा हुआ। बम्बई के एक अस्पताल में एक सौ रोगियों को लिया गया, जिन्हें लगातार महीनों तक योग निद्रा जैसे सरल अभ्यास कराए गए। डॉ. दाँते और उनके सहयोगियों द्वारा संचालित इस अनुसंधान के भी बड़े उत्साहवर्धक परिणाम मिले।

मैं ये दो-चार उदाहरण आप लोगों के सामने इसलिए प्रस्तुत कर रहा हूँ कि आपके मन में यह बात जम जानी चाहिए कि योग एक विज्ञान है। साथ ही मैं यह भी आपको बतलाना चाहता हूँ कि केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, बल्कि मन की बीमारियों को दूर करने में भी योग का उतना ही सामर्थ्य है। बीमारी शरीर में होती हो और शरीर में ही रहती हो, ऐसा नहीं है। बीमारी मन में पैदा होती हो और मन में रहती हो, ऐसा भी नहीं है। बीमारी शरीर में पैदा होती है और मन पर असर करती है; बीमारी मन में पैदा होती है और शरीर पर असर करती है। इसका मतलब कोई भी बीमारी न तो केवल शारीरिक है और न ही केवल मानसिक। हर बीमारी साइको-सोमेटिक है, मनो-कायिक है। पैर में अगर छोटा-सा फोड़ा भी हो जाए और 15-20 दिन रह जाए तो मन पर असर करता है। मन में चिन्ता उत्पन्न हो जाए तो वह मात्र मन में ही नहीं, बल्कि शरीर पर भी असर करती है। योग की निश्चित धारणा है कि मनुष्य की प्रत्येक बीमारी शरीर और मन, इन दोनों को लेकर होती है। इसलिए जब हम किसी भी रोगी को योगाभ्यास कराते हैं तो केवल शारीरिक दृष्टिकोण से नहीं कराते, बल्कि मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी कराते हैं।

योग के तीन आयाम

मनुष्य का जीवन तीन तत्त्वों का सम्मिश्रण है—शरीर, मन और आत्मा, जिनका पारस्परिक संबंध है। जहाँ इन तीनों में असंतुलन पैदा होता है, वहीं पर बीमारियाँ पैदा होती हैं। इसलिए तीन बातें योग अभ्यास में जरूर आनी चाहिए। गलती से भी कभी ऐसा मत कहना कि हम केवल आसन-प्राणायाम पर ही विश्वास करते

हैं। यह अवैज्ञानिक सोच है। ऐसा भी मत कहना कि हम तो केवल ध्यान करते हैं, योग के शारीरिक पक्ष से हम को मतलब नहीं। यह भी अवैज्ञानिक कथन है। यह भी मत कहना कि हम शरीर और मन को साफ रखने के लिए योग करते हैं, बाकी ऊपर की चीजें हमें समझ में नहीं आतीं। अपने अज्ञान के कारण योग के बारे में जो हम लोगों का कभी-कभी दुराग्रह बन जाता है वह ठीक नहीं है।

योग में तीन बातें याद रखने की हैं—हठ योग, राज योग और ज्ञान योग। इन तीनों को साथ लेकर चलना होगा। मैंने कहा कि मनुष्य जीवन तीन तत्त्वों से बना है—शरीर, मन और आत्मा। इन तीन तत्त्वों के समन्वय को ही हम 'मैं' कहते हैं और इन तीनों के कल्याण के लिए हमें हठ योग, राज योग और ज्ञान योग का समन्वय करना पड़ेगा। इसी समन्वय का नाम योग है।

हठ योग शारीरिक योग है और बहुत-से लोग जानते हैं कि इसके अंतर्गत आसन, प्राणायाम, नेति, धौति, बस्ती, कपालभाति, त्राटक जैसे अभ्यास आते हैं। इस पर बहुत अनुसंधान हो चुका है। बनारस में डॉ. उड्डपा काम करते हैं। ऑल इण्डिया इंस्टिच्यूट ऑफ मेडिकल साइंस में काम चल रहा है। बड़े-बड़े डॉक्टर इस विषय पर लगे हुए हैं और यह पता लगा रहे हैं कि आसन का कहाँ प्रभाव पड़ता है। इस पर मोटी-मोटी किताबें भी तैयार हो रही हैं। परन्तु जो बात आज समझने की है, वह दूसरी है। हम आँखें बंद करके जो बैठ जाते हैं यह क्या चीज है? यह कोई आध्यात्मिक अभ्यास है क्या? या जो लोग भगवान को पाना चाहते हैं केवल उन्हें यह करना चाहिए? जब हम आसन लगाकर चुपचाप बैठ जाते हैं उसका हमारे व्यवहार पर, हमारे मन पर, हमारी भावना पर और हमारे शरीर पर असर पड़ता है कि नहीं पड़ता? ध्यान की जो क्रिया है यह क्या केवल आध्यात्मिक है या और भी कुछ है?

ध्यान का प्रयोजन

मुझसे अगर पूछो तो मेरे पास एक छोटा-सा उत्तर है—ध्यान के द्वारा मनुष्य अपने तन, मन और आत्मा, तीनों को साफ करता जाता है। दुनिया के लोग प्राय: ध्यान के बारे में यह सोचते हैं कि हिमालय में शंकर जी की तरह आँख बंद करके बैठ जाना और भगवान के साथ एक हो जाना ही ध्यान है। बात गलत नहीं है। मगर उन्हें एक चीज का पता नहीं। इसी ध्यान के द्वारा साधारण मनुष्य अपनी मानसिक अशान्ति को दूर कर सकता है। इसी ध्यान के द्वारा मनुष्य अपनी भावनाओं का संतुलन कर सकता है। इसी ध्यान के द्वारा मनुष्य अपने मन के अंदर छिपे मैल को निकाल सकता है। दुनिया के लोग समझते हैं कि मैल शरीर का होता है, बीमारी शरीर में ही होती है। पर क्या यह सत्य है? क्या मन बीमार नहीं होता? क्या मन कमजोर नहीं होता? क्या मन में मैल नहीं?

शरीर के मैल को दूर करने के लिए हमने योग में रास्ता बतला दिया है। शंख प्रक्षालन, कुंजल क्रिया, वस्त्र धौति, नेति–ये कुछ तरीके हैं इसके लिए। लेकिन अगर केवल शरीर साफ हो जाए पर मन साफ न हो तो बीमारी नहीं जाती है, उसकी जड़ रह जाती है। मन के मैल को दूर करने के लिए कौन-से साधन हैं, कौन-सी क्रियाएँ हैं? यदि मन का मैल दूर नहीं हुआ तो उसका मनुष्य पर, परिवार पर, समाज पर और राष्ट्र पर असर पड़ता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब मन बीमार होता है तब वह गलत बातें सोचता है, दूसरों को गलत दृष्टि से देखता है। इसलिए मन को भी स्वस्थ बनाने के लिए हमारे महात्माओं ने ध्यान योग की क्रियाएँ बतलाईं। अब आप समझ गये होंगे कि हिमालय पर्वत पर पद्मासन लगाकर, आँखें बंद करके जो ध्यान करते थे वह केवल समाधि के लिए नहीं, केवल मोक्ष के लिए नहीं, बल्कि अपने मन की निर्बलता और बीमारी को दूर करने के लिए करते थे। ध्यान की यही क्रिया प्रत्येक व्यक्ति को सीखनी होगी। मन की अशान्ति को दूर करने का, जीवन में जो चिंता हमलोगों को घेरे हुए है, उसे दूर करने का कोई उपाय नहीं है ध्यान के अलावा।

अमेरिका के एक बहुत बड़े लेखक ने चिंता से मुक्त होने के लिए एक किताब लिखी थी। लाखों-करोड़ों अमेरिकन और यूरोपियन लोगों ने उसे पढ़ा, मगर कोई भी चिन्तामुक्त नहीं हो सका, क्योंकि चिन्ता से मुक्त होने के लिए हमें अपने मन में उस कारण को खोजना होगा जो चिन्ता का मूल है। इसीलिए ध्यान में हम सबसे पहले साधक को एक मंत्र या एक शब्द या एक ध्वनि या एक वाक्य देकर कहते हैं,

बस यहीं पर मन टिकाओ। यह क्या है? इसे कहते हैं डायनामाइट का सिद्धांत। आप जानते हैं न पहाड़ को तोड़ने के लिए जब डायनामाइट डाला जाता है तो पहाड़ जोर से फूटता है। उसी प्रकार मनुष्य के मन के अंदर बहुत कचरा भरा हुआ है जिसकी वजह से उसके मन पर असर हो रहा है। उसे निकालना होगा। कैसे? जैसे ही हम ध्यान के लिए बैठते हैं, ठीक उसी समय हमारे मन के अंदर से अनेकों प्रकार के विचार उठते हैं। बाकी समय नहीं उठते। जब ये विचार हमारे मन में उठते हैं तो इन्हें उठने देना चाहिए, इन्हें रोकना नहीं है। जैसे-जैसे एकाग्रता प्रगाढ़ होते जाती है वैसे-वैसे हमारे मन में जो मैल है वह निकलता जाता है।

मैंने शुरू में पूछा था कि मन के मैल को धोओगे कैसे? अब मैं बतला रहा हूँ कि मन का मैल है क्या। संस्कार मन का मैल है, कर्म मन का मैल है, वह उसमें जुड़ा हुआ है। उसे ध्यान की क्रियाओं द्वारा निकालते हैं। साधक लोग रोज मुझ से एक ही प्रश्न पूछते हैं कि जैसे ही वे ध्यान, एकाग्रता या पूजापाठ के लिए बैठते हैं, ठीक उसी समय विचारों का तूफान और बवण्डर आता है। मैं कहता हूँ कि बिल्कुल ठीक हैं, पर लोग समझते हैं कि साधु जी टरका रहे हैं। वे कहते हैं कि जब ध्यान के लिए बैठते हैं तब पुराने-पुराने विचार, छोटी-मोटी बातें सब आती हैं और मेरा उत्तर है, बिल्कुल ठीक चल रहा है, विचारों को आने दो। तब वे पूछते हैं कि जब उनको आना ही है तो एकाग्रता का अभ्यास क्यों करना, और मेरा कहना है कि जब तक तुम एकाग्रता नहीं करोगे तब तक डायनामाइट काम नहीं करेगा। जैसे-जैसे एकाग्रता गहरी होगी वैसे-वैसे मनुष्य के मन के अंदर छिपा हुआ कचरा विचारों, अनुभवों और स्मृतियों के रूप में निकलेगा। जैसे ही एकाग्रता का अभ्यास बंद किया वह भी बंद हुआ। जिस तरह से हम लोग अपने घर के अंदर का कचरा दरवाजा और नाली खोलकर बाहर निकालते हैं, उसी तरह हम अपने मन के अंदर के संस्कारों, विकारों और कर्मों को बाहर निकालते हैं। यह कितने दिन तक चलेगा? बहुत दिनों तक चलेगा। एक-दो साल भी चल सकता है। आप एक वाक्य या शब्द ले लीजिए और उस शब्द पर अपने मन को केन्द्रित करते जाइये। जैसे-जैसे आपका मन उस शब्द पर केन्द्रित होता जाएगा, वैसे-वैसे विचार उठते जायेंगे। बस इतना ही करना है। इसी को कहते हैं ध्यान का अभ्यास।

– 7 जनवरी 1979, राँची

तुम्हें अपने मन को ही पहले ठीक करना होगा। मन के सुधरते ही तुम्हारे अन्तर की पीड़ा, जीवन का असन्तोष, वस्तुओं का अभाव तुरन्त चला जाएगा।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मन का अन्वेषण

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

मन के सूक्ष्म व्यवहारों को समझने के लिए आत्म-विश्लेषण, चिन्तन और ध्यान का आश्रय लेना पड़ता है। वैसा वाला ध्यान नहीं जो सामान्य रूप से जाना जाता है, बल्कि योग सूत्रों में महर्षि पतंजलि द्वारा निरूपित ध्यान का क्रम। उनके अनुसार यह क्रम प्रत्याहार के अभ्यास से प्रारम्भ होता है, ध्यान से नहीं। केवल आँखें बन्द कर लेना ध्यान नहीं है, बल्कि इसे अपने आन्तरिक सौंदर्य का साक्षात्कार कराने वाले साधन के रूप में समझना चाहिए। प्रत्याहार और धारणा के क्रमिक अभ्यासों द्वारा ही व्यक्ति धीरे-धीरे मन की गहराइयों में उतर सकता है और पता लगा सकता है कि कहाँ वह सकारात्मक रूप से जुड़ा है और कहाँ नकारात्मक रूप से। यदि कोई सम्बन्ध नकारात्मक है तो उसे बदलने का प्रयास करे और सकारात्मक है तो उसकी वृद्धि करे। यह समझ और ज्ञान तब मिलता है, जब तुम प्रत्याहार के अभ्यास से अपनी सभी मानसिक गतिविधियों को देख-समझ लेते हो, मन के अनजान आयामों का अवलोकन कर लेते हो और अपनी मानसिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित और निर्देशित करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हो।

अपने विचारों को एक मिनट के लिए रोक कर देखो। साठ सेकेण्ड के लिए विचारशून्य हो जाओ। ऐसा सचमुच कर सकते हो क्या? नहीं। तब कैसे कह सकते हो कि तुम ध्यान के अनुभवी अभ्यासी हो। अगर तुमने प्रत्याहार को सिद्ध कर लिया है, तब तुम अपने विचारों को रोक सकते हो। साठ सेकेण्ड तो क्या, साठ दिनों तक भी। एकाग्रता या धारणा ध्यान का दूसरा महत्त्वपूर्ण चरण है। यदि तुम्हें आधे घण्टे तक आँखें बन्द कर बैठने को कहा जाए तो दस मिनट बाद ही झपकियाँ लेने लगोगे। तुम सो जाओगे और बाद में कहोगे, 'वाह! आज कितना बढ़िया ध्यान लगा!' तुम्हारे लिए नींद ही ध्यान बन जाती है। लोगों को तो सत्संग में भी अपनी आँखें खुली रखने में दिक्कत होती है, और वे ध्यान में सजग और सतर्क रहना चाहते हैं! यह असम्भव है। जिनका अपने मन पर नियंत्रण नहीं, वे ध्यान का अभ्यास बिल्कुल नहीं कर सकते।

जिन्होंने प्रत्याहार और धारणा सिद्ध कर लिया है, उन्हें अगर छ: घण्टे ध्यान करने को कहा जाए तो यकीन मानो, वे एक सेकेण्ड के लिए भी झपकी नहीं लेंगे और उनकी सजगता प्रारम्भ से अन्त तक एक-समान बनी रहेगी। उसमें कोई विक्षेप या अस्त-व्यस्तता नहीं होगी। अगर तुम ऐसा कर सकते हो तभी ध्यान के अभ्यासी कहलाने लायक हो। तभी ध्यान तुम्हारे लिए सार्थक होगा। लेकिन अगर केवल आँखें बन्द करके अपने आपको खोने के लिए ध्यान का अभ्यास करना चाहते

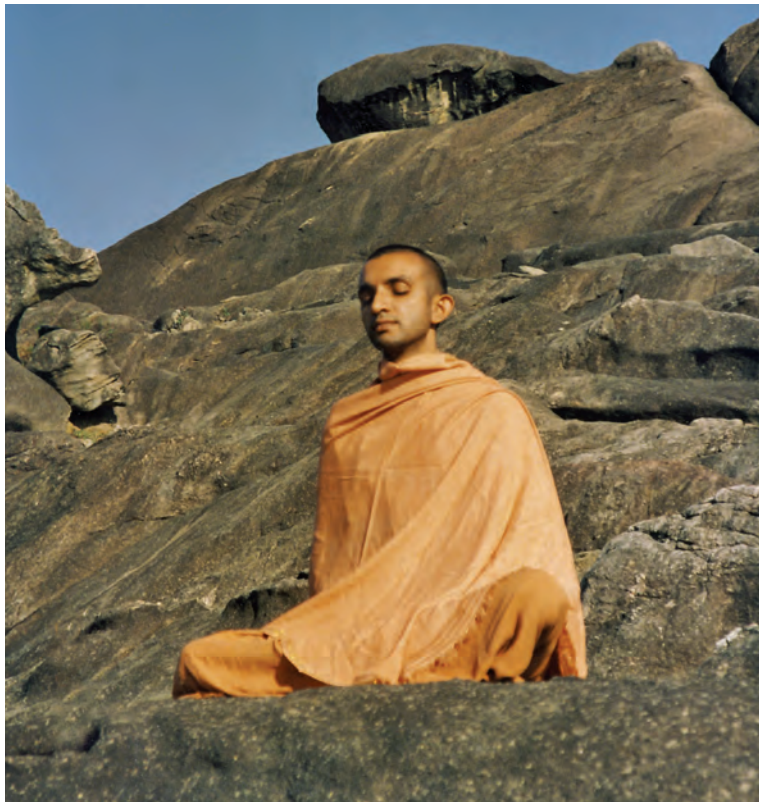

हो तो वह निरर्थक और निष्प्रयोजन है। अधिकांश लोगों का अपने मन पर कोई नियंत्रण नहीं होता। जिसे वे ध्यान कहते हैं वह चित्तवृत्तियों के आवेग में डोलती मनोवस्थाओं के सिवा और कुछ नहीं होता।

प्रत्याहार और धारणा के क्रम में जब तुम यह भली-भाँति जान लेते हो कि अहंकार, चित्त, बुद्धि एवं मनस् की प्रकृति और अभिव्यक्ति को समझना और रूपान्तरित करना है, तब तुम मन की एक उच्चतर अवस्था में प्रवेश करने का प्रयास करते हो। यही अवस्था ध्यान है। तब जाकर ध्यान तुम्हारे लिए प्रासंगिक होता है। नहीं तो बेहतर होगा कि तुम प्रत्याहार और धारणा पर ही टिके रहो।

महर्षि पतंजलि यह तथ्य भली-भाँति जानते थे। इसीलिए उन्होंने प्रत्याहार और धारणा पर जोर दिया। प्रत्याहार का अभिप्राय है, इन्द्रियों को उनके विषयों से वापस लाना। मनोनियंत्रण के क्रम में महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार और धारणा को ध्यान से पहले रखा। उनकी दृष्टि में अगर केवल ध्यान महत्त्वपूर्ण होता तो वे प्रत्याहार और धारणा की उपेक्षा कर देते और अष्टांग योग के बदले षडंग योग (यम, नियम,

आसन, प्राणायाम, ध्यान और समाधि) का ही प्रचलन होता। लेकिन उन्होंने मन को उसके विषयों से अलग करने के महत्त्व को समझा। वे जानते थे कि इससे मन अपनी नकारात्मक वृत्तियों और अभिव्यक्तियों से मुक्त हो सकेगा, जिसके बाद सकारात्मक गुणों का विकास सम्भव हो सकेगा। इसीलिए मन के प्रबन्धन में प्रत्याहार और धारणा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अगर तुम अपने मन की प्रतिभाओं को विकसित करना चाहते हो तो सबसे पहले अपने आपको तनावों से मुक्त करो। अगर तुम तनावग्रस्त हो तो तुम अपने भीतर कोई प्रतिभा नहीं विकसित कर सकते। इसलिए तनाव-मुक्ति आवश्यक है। तनावों से मुक्त होने के बाद अपने व्यवहारों और प्रतिक्रियाओं का अवलोकन करने और उनमें संतुलन और सामंजस्य लाने की प्रक्रिया प्रारम्भ करो।

प्रत्याहार के प्रथम अभ्यास, 'योग निद्रा' द्वारा तनावों से छुटकारा मिलता है। उसके पश्चात् आता है अपने व्यवहारों और प्रतिक्रियाओं का अवलोकन एवं विश्लेषण। इसके लिए रात में सोने से पहले अपने पूरे दिन का अवलोकन करो। दिन भर जो कुछ तुमने किया है, जो कुछ हुआ है, उसे पाँच मिनट के लिए अपने मानस-पटल पर फिल्म की तरह चलने दो। 'मैं इतने बजे जगा, उसके बाद यह किया, वह किया, इस आदमी से बातें की, दिन बढ़िया रहा या बुरा रहा...' अगर दिन बुरा रहा तो स्वयं से पूछो, 'क्यों बुरा रहा? क्या मेरी मनोवृत्ति नकारात्मक थी? क्या दूसरा व्यक्ति आक्रामक था?' तुम्हें सभी चीजें देखनी हैं। सभी चीजें स्वीकार लेने के पश्चात् अपने से पूछो, 'अगर कल भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना हो तो मैं अपनी प्रतिक्रिया को कैसे सुधार सकता हूँ?' इसे पता लगाने का प्रयास करो। यह मत कहो, 'मैं नहीं सोच सकता।' अगर तुम सोच नहीं सकते तो इसका मतलब है तुम्हारे पास बुद्धि नहीं। ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को बुद्धि प्रदान की है, लेकिन तुम समस्या से इतना तादात्म्य स्थापित कर लेते हो कि समाधान देख नहीं पाते। जीवन का स्वभाव ही कुछ ऐसा है। जीवन तुम्हें कहीं पर अटकाता नहीं, तुम स्वयं ही अपने को अटकाये रखते हो।

मुझे अपने जीवन में कोई समस्या नहीं रही, क्योंकि जब भी कोई समस्या आती तब उसका समाधान भी आ जाता

था। मैंने अपने गुरु से कभी नहीं पूछा, 'मुझे अमुक समस्या है, इसका समाधान क्या है?' मैंने उनसे कभी नहीं पूछा, 'मुझे घुटने में दर्द है, इसके लिए क्या करूँ? मुझे अमुक अनुभव हो रहा है, यह अच्छा है या बुरा? आज मैंने ध्यान में परियों और फरिश्तों को देखा, डरावने चेहरों को देखा। मैं क्या करूँ?' ऐसी बातें मैंने अपने गुरु से कभी नहीं कीं, क्योंकि उन्होंने मुझे अलग प्रकार का प्रशिक्षण दिया है—'अगर तुम्हारी कोई समस्या है तो स्वयं उसका समाधान खोजो।' मैं अपने जीवन में इसी सूत्र का प्रयोग करता हूँ। इसलिए जब लोग कोई समस्या लेकर मेरे पास आते हैं तब मैं उनसे प्राय: यही कहता हूँ, 'मुझे अपनी समस्या मत बताओ। यह बतलाओ कि उसका समाधान क्या है। अपनी बिगड़ी परिस्थिति का इलाज तो खुद ही करना पड़ेगा। मैं तो केवल परामर्श दे सकता हूँ। अगर तुम बहुत ज्यादा सोचते हो, तो ज्यादा मत सोचो। अगर उदास हो, तो कीर्त्तन करो, नाचो, कूदो, प्रसन्न रहो। अगर अहंकारवश किसी से अनबन हो गई है तो जाकर उससे हाथ मिला लो।' मैं तो केवल सलाह दे सकता हूँ। अपने जीवन में तालमेल तो तुम्हें खुद बिठाना है। अगर ऐसा कर पाते हो तो कठिन परिस्थिति से बाहर निकल आओगे, और अगर ऐसा नहीं कर सकते, तो छोटी समस्या भी बड़ी हो जायेगी, तिल से ताड़ बन जायेगा।

भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अपनी प्रतिक्रियाओं को समझो और स्वीकार करो। स्वयं को तनावों से मुक्त रखो, दिनभर की घटनाओं और गतिविधियों का अवलोकन करो। मन की समस्याओं को सम्हालने की शुरूआत यहीं से होती है। अगर तुम ये दो चीजें कर सकते हो, तो मैं आश्वासन दे सकता हूँ कि तुम्हारी साठ प्रतिशत मानसिक समस्याएँ अपने आप सुलझ जाएँगी। लेकिन ये अभ्यास नियम और श्रद्धा के साथ करने होंगे।

जब तुम्हें बुखार या कोई और रोग होता है तब डॉक्टर कुछ दिनों के लिए एन्टीबायोटिक दवाएँ देता है। दवा लेने के क्रम को तुम्हें निश्चित दिनों तक पूरा करना होता है। तुम बीच में ही दवा नहीं छोड़ सकते। यही सिद्धान्त योगाभ्यास पर भी लागू होता है। तुम सबेरे जग नहीं सके या थोड़ा आलस लग रहा है तो कह देते हो, 'आज मैं योगाभ्यास नहीं करूँगा।' इसका तात्पर्य यह कि तुम आज की एन्टीबायोटिक दवा नहीं ले रहे हो। वैसे देखा जाए तो योग एन्टीबायोटिक नहीं, 'प्रो-बायोटिक' है, जीवन का पोषक तत्त्व है। अगर तुम एन्टीबायोटिक दवा को निश्चित दिनों तक ले सकते हो, तो अपनी प्रो-बायोटिक दवा अर्थात् योग का भी उसी नियमितता से सेवन क्यों नहीं कर सकते? बुद्धि, भावना और कर्म को सम्हालने और सुधारने की यात्रा यहीं से प्रारम्भ होती है।

—'बुद्धि, भावना और कर्म' से उद्धृत

सत्यम् वाणी

ब्राह्मण की परिभाषा

प्राचीन काल में हमारे समाज में जो बहुत प्रतिभाशाली लोग होते थे, उन्हें ब्राह्मण कहते थे, और ये ब्राह्मण उस काल में बहुत ऊँचा जीवन बिताते थे। वे विवाहित भी होते थे और अविवाहित भी। वे भिक्षा पर जीवनयापन करते थे, सम्पत्ति नहीं रखते थे और नियमों का कड़ाई से पालन करते थे। ये ब्राह्मण दो प्रकार के होते थे। कुछ तो जाति से ब्राह्मण होते थे, और दूसरे द्विज होते थे, जो किसी अन्य जाति के होते थे, पर उनका संस्कार होता था दूसरी बार। द्विज माने दुबारा जन्मा, जिसका दूसरा संस्कार हो गया। द्विज संस्कार में उपनयन या यज्ञोपवीत बहुत जरूरी संस्कार माना जाता था। इस संस्कार के बाद बारह साल तक गुरुकुल में रहना पड़ता था जहाँ वेद विद्या का अध्ययन किया जाता था।

जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेदपाठी भवेत् विप्रः, ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

ब्रह्म का मतलब वेद होता है। यद्यपि बाद में ब्रह्म का मतलब परमात्मा से लिया गया, मगर प्राचीन काल में, वेदों में ब्रह्म का मतलब होता था वेद। जो वेद को जानता है वह ब्राह्मण। ब्राह्मण का मतलब यही होता था। वे ब्राह्मण इतनी ऊँची कोटि के होते थे कि उनमें श्राप देने की भी शक्ति होती थी। अगर वे गलती से भी श्राप दे देते थे तो वह सच हो जाता था। रामचरितमानस में आपने प्रतापभानु की कहानी तो पढ़ी ही होगी, जिसे ब्राह्मणों का घोर श्राप सहना पड़ा।

राजा और राजनीति

प्रतापभानु की गलती यह थी कि जो कपटी राजा उसे मुनि-वेष में मिला था, उसके साथ उसने साठगाँठ की। राजा को ऐसा नहीं करना चाहिए। शासन के नियमों के अनुसार राजा को केवल सभापति की तरह कार्य करने का अधिकार होता है। राजनैतिक षड्यंत्र, दाँवपेंच आदि जितने भी अधिकार होते हैं, वे प्रधानमंत्री या अमात्य को होते हैं। कहीं षड्यंत्र करना हो या किसी को मरवाना हो या किसी के देश पर हमला करना हो या किसी से चुपचाप मिलना हो या किसी से कोई संवाद करना हो, राजा उसका निर्णय नहीं कर सकता। राजा शब्द का अर्थ होता है जो विराजमान है, जो अध्यक्ष है। राजा केवल बैठक की अध्यक्षता करता है। मन्त्री लोग गपशप करते हैं, निष्कर्ष निकालते हैं और राजा केवल हाँ कह देता है। वह केवल संशोधन या अनुमोदन करता है, इसलिये राजा हमेशा रबर-स्टाम्प होकर रहता है।

प्राचीन काल से राजा क्षत्रिय हुआ करता था और प्रधानमन्त्री ब्राह्मण, क्योंकि वह बहुत तेज आदमी होना चाहिए। वह हमेशा नीति-नियम पर चलता था, राजा के इशारों पर नहीं। राजा को भोग-विलास और ऐशो-आराम में रखा गया, तुम इतना भर करो कि ठप्पा लगा दो, बाकी हम लोग निश्चित कर लेंगे।

प्रतापभानु ने यही गलती की कि उस कपटी से गुपचुप समझौता किया जो राजा को नहीं करना चाहिये था और इसीलिये वह दोषी था। अगर वह अपने प्रधानमन्त्री, धर्मरुचि से कह देता कि जंगल में ऐसा-ऐसा हुआ, पुरोहित को बदल दिया गया है तो बात दूसरी थी। न उसके बेटे को मालूम था, न पत्नी को मालूम था, किसी को मालूम नहीं था। राजा का मुनि के साथ समझौता हुआ कि वह राजपुरोहित को हर ले जाएगा और उसके बदले खुद पुरोहित बन जाएगा। यह एक प्रकार से षड्यंत्र था, गुप्त समझौता जिसको कहते हैं। राजा को यह गुप्त समझौता क्यों करना चाहिए था? उसने मुनि से यह बात कही कि मैं महा-शक्तिशाली बनना चाहता हूँ। मुनि ने कहा, यह रास्ता है। राजा को कहना चाहिए था, ठीक है मैं अपने मंत्री से बात करता हूँ, हम निश्चित करेंगे, तुम भी आओ। लेकिन उसने सब कुछ निजी तौर पर किया। चुपचाप वह महल में पहुँच गया और लोगों को लगा कि वह आखेट से वापस आ गया है। उसके अलावा किसी और को खबर तक नहीं थी।

राजा को अकेले कोई भी राज-कार्य करने का अधिकार नहीं होता। प्रजातंत्र में भी नहीं होता। किसी भी राजनैतिक तंत्र में राजा को अकेले निर्णय करने के अधिकार नहीं होते, और जब एक को ऐसे अधिकार होते हैं, उसको कहते हैं तानाशाही या सामन्तशाही या निरंकुश शासन। इसमें एक ही आदमी सब निर्णय ले लेता है।

खुद सब निर्णय ले लेना ही प्रतापभानु की सबसे बड़ी गलती थी। यह उसके चरित्र का मुख्य दुर्गुण था जो रावण में भी प्रकट हुआ। रावण भी ऐसा ही था। वह जब सीता का हरण करना चाहता था तो दस-बीस से पूछता। वह जब मारीच के पास गया मदद के लिये तो उसने मना कर दिया। रावण ने डरा-धमकाकर उसे मजबूर किया और मारीच ने डर के मारे साथ दिया। उसके बाद जब मंदोदरी को पता चला तो उसने भी रावण को समझाया, पर उसकी बात नहीं माना। माल्यवन्त ने समझाया, उसकी बात भी नहीं माना। विभीषण ने उसे समझाया, उसकी बात

भी नहीं माना। उसके नाना, ऋषि पुलस्त्य ने भी उसे चिट्ठी भेजी, उनकी बात भी नहीं माना। वह बड़ा निरंकुश था, जो संस्कार प्रतापभानु में था वही उसमें आया।

जब मारीच ने श्रीराम को अवतार के रूप में पहचान लिया था तो फिर राम जी की आवाज निकालकर लक्ष्मण और सीताजी को क्यों पुकारा?

पति-पत्नी जानते हैं कि उन्हें साथ में रहना है फिर भी रोज नोक-झोंक क्यों होती है? मालूम होने पर भी ऐसा होता है। मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ज्ञान होते हुए भी वह अज्ञानी है। कोई भी व्यक्ति इसका अपवाद नहीं है। वह सब कुछ जानता है, फिर भी अज्ञानी का जीवन बिताता है। सब लोग बोलते हैं कि भगवान ही सब कुछ करते हैं, मरना-जीना मनुष्य के अधीन नहीं हैं। सब मानते हैं, विश्वास भी करते हैं, मगर जब व्यवहार की बात आती है तो सब विफल हो जाते हैं। कोई बीमार होता है तो लोग क्यों घबराते हैं? अज्ञान की वजह से। घर में जब कोई मर जाता है तो लोग क्यों इतने शोकाकुल हो जाते हैं? इसका यथार्थ से कोई मतलब नहीं है, अज्ञान से मतलब है। रात के बाद दिन आता है, दिन के बाद रात आती है, पतझड़ के बाद बसंत आता है, बसंत के बाद पतझड़ आती है, सब जानते हैं, मगर फिर भी जब घर में कोई मुसीबत आती है सब पूरी तरह से पटरी से उतर जाते हैं। पति और पत्नी को मालूम है जीवन भर साथ रहना है फिर भी रोज झगड़ते हैं। लोगों को मालूम है मद्यपान करने से बुद्धि नष्ट होती है, पीने वाला भी जानता है, फिर भी पीता है।

मनुष्य के जीवन में ज्ञान और अज्ञान के बीच यह द्वन्द्व चलता ही रहता है। इसलिए मारीच को यद्यपि मालूम था कि श्रीराम भगवान के अवतार हैं और उसे यह कह देना चाहिए कि सीताजी के अपहरण का प्रयत्न हो रहा है, उसने यह सब नहीं कहा क्योंकि वह अज्ञान के वश में था। मुख्य चीज यह है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य को समझ या ज्ञान या अक्ल थोड़ी देर के लिए आती है, और उसके बाद वह अक्ल खत्म हो जाती है। अक्ल में निरन्तरता नहीं है। अपने व्यावहारिक जीवन में देख लो, कोई नई बात तो नहीं बोल रहा हूँ। अगर वह ज्ञान बना रहे लगातार, मनुष्य गलती नहीं करेगा। मगर ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि मनुष्य का मन चंचल है और वह सदा एक समान नहीं रहता। जैसे हमारे यहाँ बिजली की वोल्टेज कभी 230 हो जाती है तो कभी 210 तो कभी 240, वैसे ही मनुष्य का दिमाग भी ऊपर-नीचे होता है और कभी-कभी उसका फ्यूज़ भी उड़ जाता है।

सच्ची बात यह है कि मनुष्य को ज्ञान होना काफी नहीं है। ज्ञान तो सब में है, जब तुम दूसरों को समझाते हो तो कितना अच्छा समझाते हो! मगर जब खुद को समझाना होता है तब नहीं समझा पाते हो। *पर उपदेश कुशल बहुतेरे*–जब तुम दूसरों को समझाते हो तो कितने कुशल हो जाते हो। मनुष्य सब कुछ जानता है, उसे मालूम है मृत्यु अनिवार्य है, उसे यह भी मालूम है कि मृत्यु का कारण कुछ भी

हो सकता है। उसे यह भी मालूम है कि सम्पत्ति-विपत्ति दिन-रात की तरह आती है। उसे यह भी मालूम है कि *सब दिन जात न एक समान*। उसे यह भी मालूम है कि *कर्म गति टारे न टरे।* मनुष्य यह सब जानता है, मगर जब परिस्थिति अपने ऊपर आती है तो आग्रह करता है कि ऐसा न हो। क्यों? इसलिए कि मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी या सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह परम आनन्द की प्राप्ति चाहता है और दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति। यह मनुष्य का मूल स्वभाव है, उसका धर्म है।

परमानन्द का मतलब होता है आनन्द ही आनन्द। मनुष्य चाहता है कि उसको ऐसा आनन्द मिले जिसमें कोई बाधा ही न हो। साथ ही चाहता है कि दु:ख केवल थोड़ी देर के लिये निवृत्त न हो, बल्कि दु:ख की पूरी निवृत्ति हो जाए। परमानन्द की प्राप्ति और दु:ख की पूर्ण निवृत्ति—यह जीव का स्वभाव है। जीव किसको कहते हैं? जो परमात्मा का अंश तुम्हारे अन्दर है—*ईस्वर अंस जीव अबिनासी, चेतन अमल सहज सुख रासि।* उसका सहज स्वरूप ही सुख है। अब जब तक मनुष्य उस तक नहीं पहुँचेगा, ईश्वर अंश से नहीं जुड़ेगा तब तक परमानन्द का अनुभव होगा ही नहीं। परमानन्द प्राप्ति नहीं है, यह अनुभूति है। इसी प्रकार से दु:ख और सुख प्राप्ति नहीं, अनुभूति होती है। सुख एक अनुभूति का नाम है, दु:ख एक अनुभूति का नाम है। लोग कहते हैं मृत्यु से दु:ख होता है। नहीं, मृत्यु से दु:ख नहीं होता। अगर होता तो हम जिन्दा ही नहीं रह पाते, क्योंकि रोज तो लाखों मर रहे हैं। कोई बस से मर रहा है, कोई बम से मर रहा है, कोई आत्महत्या से मर रहा है। रोज रोते हो क्या तुम लोग? नहीं, मृत्यु दु:ख का कारण नहीं, उससे दु:ख तब होता

है जब उसका सम्बन्ध तुम्हारी अनुभूति से हो। तुम्हारी अनुभूति सीमित है ममता से। ममता एक तार है जो तुम्हें दूसरों से जोड़ती है। ममता ही मृत्यु को दुःख का कारण मानकर दिमाग में घुसाती है। असली बात वही है।

जब भी कोई घटना मनुष्य जीवन में घटती है तो एक बात याद रखो कि उस घटना का कहीं-न-कहीं से कुछ सम्बन्ध जरूर होता है। समझ में ज्यादा आवे या न आवे, पर यह मानकर चलो कि कहीं की घटना का सम्बन्ध कहीं से होता है। मारीच का रावण के साथ एक सम्बन्ध था और उसका श्रीराम के साथ भी एक सम्बन्ध था। फिर सीताजी के अपहरण में उसकी जो भूमिका रही, वह क्यों थी? कर्मों का एक गणित होता है और वह अचूक होता है। अब उसमें मनुष्य देह धारण करके भगवान भी आएँगे तो उन्हें शरीर के धर्मों का पालन करना पड़ेगा। अगर करोड़पति का लड़का किसी फिल्म में भिखारी की भूमिका अदा करे तो उसे भिखारी के धर्म का पालन करना पड़ेगा। वह यह नहीं सोच सकता कि मैं करोड़पति का लड़का हूँ। उसी तरह जब भगवान भी मानव शरीर में आते हैं तो मानव देह, समाज और राष्ट्र के जितने धर्म होते हैं, उन सबका पालन करना पड़ता है। इसलिए रामजी को मर्यादा का पालन करते हुए सीताजी का त्याग करना पड़ा, यद्यपि वह अनुचित माना गया। उन्हें ताड़का का वध करना पड़ा यद्यपि वह स्त्री थी और स्त्री का वध नहीं किया जा सकता था। उन्हें रावण का वध करना पड़ा यद्यपि रावण शास्त्र के अनुसार अवध्य था, वह ब्राह्मण जो था।

जीवन का धर्म परिस्थिति, देश और काल के अनुसार बनता है। कृष्ण जी आए, कितने समर्थ थे, मगर कर्म से मुक्त नहीं रहे। खुद गीता में उन्होंने कहा है,

गहना कर्मणो गति:। कर्म का बहुत गहरा विज्ञान है। मारीच रामजी की दिव्यता को पहचानता था, उसने रावण को अच्छी तरह से समझाया भी था। फिर वह काम क्यों किया रावण के कहने पर? क्या वह सीताजी को एक इशारा नहीं दे सकता था कि मैं नकली हूँ? क्या हो गया उसकी मति को? खाली कह देता सीताजी से कि हम जाली हैं, काम चल जाता। इतनी दूर दौड़ाना नहीं पड़ता। या कह देता रामजी से कि मुझे मत मारो, मैं मारीच हूँ। नहीं, कुछ नहीं बोला। आखिर उसकी मति क्यों मारी गई? कर्म ही मनुष्य की मति को तय करता है। रामचरितमानस में कहा है *'सुमति कुमति सब कें उर रहहीं'*। सुमति कुमति तो सबके मन में रहती है, मगर कहीं पर सुमति प्रमुख हो जाती है तो कहीं पर कुमति।

मैं अभी शादी करने की बजाय उच्च शिक्षा के लिए संस्कृत में जाना चाहती हूँ। इसमें क्या संभावनाएँ हैं?

देश-विदेश के लोग वैदिक संस्कृति और वाङ्मय पर शोध करते हैं और यहाँ की सभी प्राचीन परम्पराएँ, इतिहास और शास्त्र संस्कृत में ही लिपिबद्ध हैं। हिन्दुस्तान में जितने भी विश्वविद्यालय हैं, वहाँ चीन, रूस, अमेरिका और जापान जैसे देशों के लोग अनुसंधान करते हैं। वे लोग शोध करने के लिए यहाँ आते हैं और उन्हें अनुसंधान के लिए अपने विश्वविद्यालय से अनुदान मिलता है। यहाँ आकर के वे लोग किसी संस्कृतविद् को ले लेते हैं, चाहे लड़का हो या लड़की। मान लो किसी को ऋग्वेद में सोम याग पर कोई शोध करना है। अब जो संस्कृत जानता है वह उसको अनुवाद करके देगा और उसके लिये भुगतान होता है। ऐसे संस्कृत विद्वानों और विद्यार्थियों का कुछ विश्वविद्यालयों की शोध परियोजना में नाम दर्ज किया जाता है। मतलब वे किसी नौकरी में बंधे नहीं, स्वतंत्र रहते हैं। जब कोई आता है उन्हें चिट्ठी लिखी जाती है कि फलाने देश से फलाना आदमी आया हुआ है, शोध करना चाहता है, उससे मिल लो। उसके बाद संस्कृत का विद्वान् उन्हें अनुवाद करके देता है अंग्रेजी या फ्रेन्च या जर्मन में। हमारे बहुत-से संन्यासी गुरु-भाई काशी में रहते हैं, सब विश्वविद्यालय से जुड़े हैं। अपनी-अपनी कुटिया है या किसी मठ में रहते हैं। शोधवाला आता है तो बुलावा जाता है, स्वामीजी, आप आइए। स्वामीजी को सामग्री दी जाती है, वे अनुवाद टाइप करके दे देते हैं। संन्यासियों में भी विद्वान् संन्यासी बहुत हैं जो अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाएँ जानते हैं। उन्हें चार-पाँच हजार मिल जाता है। वे आराम से कुटिया में रहते हैं, इधर-उधर भिक्षा माँगने के बदले एक जगह रहकर भगवान का भजन करते हैं। कहने का मतलब यह कि संस्कृत भाषा जानने वाले व्यक्ति अपना अच्छा उपयोग कर सकते हैं, मगर उसके लिए विश्वविद्यालय के लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिये।

जहाँ तक शादी का सवाल है, मेरा ऐसा विचार है कि चाहे लड़की हो या लड़का, विवाहित जीवन धार्मिक संस्कार भी है और समाज के लिए अनिवार्य भी। इसमें दो मत नहीं। यह मनुष्य की प्राकृतिक आवश्यकता भी है। प्राकृतिक आवश्यकता को सामाजिक रूप दिया गया है, यह मानने के लिए मैं तैयार हूँ, मगर लड़की के लिए केवल यही एक विकल्प हो, यह मैं आज मानने को तैयार नहीं। जीवन का एक आधार होना चाहिए, और पहले विवाह जीवन का एक आधार होता था। उस समय लड़कियों के लिए कोई दूसरा रास्ता तो था नहीं, मगर आज उनके सामने दो और विकल्प, दो और दरवाजे खुले हैं—शिक्षा और स्वावलम्बन। केवल ये दो ही नहीं हैं, बल्कि तीसरा विकल्प भी बहुत तेजी से खुल रहा है—महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति। क्या लड़कियों में महत्त्वाकांक्षा नहीं होती? क्या पुरुष ही महत्त्वाकांक्षा धारण करते हैं? दोनों के मस्तिष्क अलग हैं क्या? नहीं, लड़कियों में भी महत्त्वाकांक्षा होती है, और उतनी ही होती है जितनी लड़कों में होती है। किन्तु हम लोगों ने ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनैतिक कारणों से उनकी महत्त्वाकांक्षाओं को पनपने नहीं दिया। ठीक है, तुम्हें महत्त्वाकांक्षा न हो, मगर तुम्हारी लड़की को निश्चित होगी। हो सकता है बोले नहीं, पर क्या वह नहीं चाहती कि किसी विश्वविद्यालय से उसे चालीस-पचास हजार डॉलर अनुदान मिल जाए तो फ्रांस में जाकर अनुसंधान करे? क्या वह यह नहीं चाहती कि चार-पाँच साल दुनिया घूमे?

लड़कियों के जीवन को लड़कों के जीवन से सामाजिक आधार पर अलग नहीं मानना। यह गलत विश्लेषण है। इसका सामाजिक कारण क्या है? मध्य युग में तुम जानते हो समाज में कैसे होता था, इसलिये लड़की को बारह-तेरह साल की उम्र में रवाना करना पड़ता था। लाल टीका लगाकर शादी का ठप्पा लगाना पड़ता था। यह सब करना पड़ता था, लेकिन जहाँ हम परिस्थितियों से हार मान लेते हैं वहाँ युग का निर्माण नहीं कर सकते। अगर हमें नया ज़माना लाना है तो हमें परिस्थितियों से हारना नहीं है। आज परिस्थितियाँ बदल रही हैं, बदल चुकी हैं। समाज इस बात को स्वीकार कर चुका है। मेरे कहने का मतलब यह कि आज समाज ने स्त्री जाति को ऊँचा उठाने का सोच लिया है। समाज को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि गृहस्थी की गाड़ी के दो पहिये होते हैं। अगर एक पहिये में छेद है तो गाड़ी ठीक से नहीं चलेगी।

हम लोगों की शादी-ब्याह के बारे में जो मान्यता है वह वैदिक सभ्यता की मान्यता नहीं है, वह बाहरी सभ्यताओं के प्रभाव का अवशेष है। वैदिक सभ्यता में स्वतंत्रता और स्वाधीनता रही है। धर्म के बारे में स्वतंत्र चिन्तन हुआ है। किसी ने कहा ईश्वर एक है, किसी ने कहा तेंतीस करोड़ देवता होते हैं, किसी ने कहा दस अवतार होते हैं। मतलब विभिन्न प्रकार के चिन्तन चले यहाँ और सबको हमने स्वीकार किया है। वैदिक धर्म के शास्त्रों में लिखा है कि विवाह में वर चुनने

का अधिकार लड़की का है। शादी का हक, शादी का कर्तव्य लड़की का है, न कि माता-पिता का। हमारे यहाँ स्वयंवर शब्द तो बहुत प्रचलित है न, क्या इसके अनुवाद की जरूरत पड़ती है? बेवकूफ भी समझता है स्वयंवर का मतलब खुद चुनना। मगर लड़की चुनेगी कैसे जी? पढ़ी-लिखी है नहीं, गंवार और फूहड़ है, तब कैसे चुनेगी? स्वयंवर का अधिकार उसी को है जो विदुषी हो, जो शिक्षित हो, जो सब कुछ समझती हो।

इसलिए सबसे पहले लड़कियों को शिक्षित करना आवश्यक है। उसके बाद उन लोगों को अच्छे काम में लगाओ। उसके साथ-साथ विवाहित जीवन भी जरूरी है। हम यह नहीं कहते कि विवाह नहीं होना चाहिये, आखिर वह तो प्राकृतिक धर्म है। भगवान ने यह नियम बनाया है कि स्त्री-पुरुष एक साथ रहें और उस प्राकृतिक धर्म को समाज ने विवाह का रूप दिया। शास्त्र कहते हैं कि हर मनुष्य के मन में कामनाएँ होती हैं। कौन-सी कामनाएँ? संतान की कामना सबके मन में समान है। धन-सम्पत्ति की भी कामना रहती है। घर में चावल हो, आटा हो, बर्त्तन हों, चीनी हो, चाय हो, तेल हो, रुपया हो, पैसा हो, गहने हों, कपड़े हों। यह भी स्वाभाविक कामना है। आखिर चूहा भी तो अन्न बटोरता है न? स्त्री-पुरुष के मिलन की कामना भी सब में स्वभाविक है, और यश की कामना भी सबमें है। तुम चाहते हो कि आस-पड़ोस में सब हमें जाने, नहीं चाहते हो क्या? यह कोई सामाजिक चीज नहीं, प्राकृतिक चीज है, जिसे कहते हैं लोक कामना। हमें मंत्री बनना है, हम पी.एच.डी. करने लंदन जा रहे हैं, इस तरह की ईश्वर-प्रदत्त कामना हर व्यक्ति के मन में है। आपके मन में नहीं होती है क्या ऐसी कामना, भले आप पूरी न कर सकें पर कभी-न-कभी तो

कामना रही होगी न? सपने केवल पुरुष ही नहीं देखता, स्त्री भी देखती है। सपना गरीब भी देखता है और अमीर भी। सदाचारी, दुराचारी, व्यभिचारी—सब लोग ख्वाब देखते हैं। इस प्राकृतिक धर्म के साथ अपने संतानों को लेकर आगे बढ़ो, हो सकता है उनमें कोई गाँधी बन जाए, कोई न्यूटन बन जाए।

प्रतिभा और नशा

अमेरिका के एक व्यक्ति की बात बतलाता हूँ। वह बहुत साधारण-सा व्यक्ति था, पर उसे एक कला मालूम थी। वह चित्र बनाना जानता था, बहुत अच्छी तस्वीर बना लेता था। सन् 1968 में मेरी उससे ऐसे ही मुलाकात हुई। उसने कहा, स्वामीजी हम आपका चित्र खींचेंगे। हमने कहा खींचो। यह न्यूयॉर्क की बात है। अठारह-बीस साल का लड़का था, हिप्पी किस्म का। उसने मेरा चित्र बनाया, और बहुत ही अच्छा बनाया। मैं जब हँसता हूँ तो आपने देखा होगा, मेरी एक खास मुस्कुराहट है। वह उसने पकड़ी और चित्र में निकाली। चेहरा तो सबका एक-सा ही होता है, मगर हर आदमी की कुछ विशेष मुद्रा या भंगिमा होती है। पुलिस के लोग इसे अच्छी तरह समझते हैं। कोई आदमी वेष बदल ले, लेकिन भंगिमा पर पकड़ा जाता है।

मैंने कहा, तुम तो विशेष आदमी हो। वह एल.एस.डी. लेता था। मालूम है न क्या होता है? वह एक प्रकार का मादक द्रव्य है जिसे लेने के बाद आदमी को वैसे अनुभव होने लगते हैं जैसे काकभुशुण्डी, अक्रूर, यशोदा या गीता के ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन को हुए थे। उसमें कितनी दुर्घटनाएँ भी हो जाती हैं। कुछ को ऐसे अनुभव हुए हैं कि बीसवीं-तीसवीं मंजिल से कूद गए हैं। सोचते हैं कि आगे सड़क है, महाभ्रम हो जाता है। मेरे पास उसको लाए थे एक हिन्दुस्तानी महात्मा। अलीगढ़ के रहने वाले थे, उनका नाम था डा. राममूर्ति मिश्रा। अब तो नहीं हैं, उनका शरीर चला गया। वे पहले न्यूयॉर्क के अस्पताल में न्यूरो सर्जन थे, फिर उन्होंने सर्जरी छोड़ दी और वहीं रह गए। साधुओं की तरह संस्कृत, वेद-वेदान्त और योग सिखाते थे। उन्होंने मुझे इस लड़के से मिलवाया। मैंने लड़के से कहा, तुम इस कला में रहो। उसने पूछा, एल.एस.डी. छोड़ दूँ। मैंने कहा, 'देखो, लेना-छोड़ना तुम्हारी मर्जी, मैं किसी की अच्छाई-बुराई में नहीं जाता, मैं इतना जानता हूँ कि तुम सूक्ष्म चीजों को पकड़ने की क्षमता रखते हो और तुम इसी क्षेत्र में जाओ।'

उसने ऐसा किया और आज वह अमेरिका का सबसे विख्यात कलाकार है। उसका नाम है पीटर मैक्स और वह विख्यात ही नहीं, करोड़पति भी है। रोल्ज़ रॉयस गाड़ियाँ रखता है। कुछ साल पहले रियो डी जनेयरो में जो बहुत बड़ा पर्यावरण सम्मेलन हुआ था, उसमें जितने भी चित्र वाले विज्ञापन थे, सभी का उसने ठेका लिया। ठेका लिया का मतलब सैकड़ों चित्रकार उसके निर्देशों पर काम कर रहे थे। पर्यावरण को प्रतिबिम्बित करने वाले चित्रों का ठेका उसको दिया गया। बड़े-

बड़े राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री वहाँ गए थे। सोचो, एक छोटे-से लड़के के अपने स्वप्न थे, उसकी अपनी एक योग्यता थी, और एक आदमी ने केवल उसे 'यह करो' बोल दिया और उसने उस बात को पकड़ लिया!

अब आप लोगों को मेरी बातें थोड़े ध्यान से सुननी होंगी। नशा खराब है, यह आयुर्वेद में भी लिखा है, धर्मशास्त्रों में भी लिखा है, सब जगह लिखा है, मगर योगशास्त्र क्या कहता है? योगशास्त्र सिद्धि की चर्चा करता है। सिद्धि की व्याख्या क्या है? अपने मन के अन्दर छिपी हुई प्रतिभा को प्रकट करने का नाम सिद्धि है। जैसे पानी से बिजली को प्रकट किया, यूरेनियम से परमाणु उर्जा को पैदा किया, लोहे के खनिज से लोहे को पैदा किया, दूध से मक्खन को पैदा किया और काठ के अन्दर से अग्नि को पैदा किया, वैसे ही अपने मन में एक छिपी हुई प्रतिभा है, जिसे प्राप्त करने के लिये योगशास्त्र पाँच उपाय बताता है। उनमें एक उपाय औषधि भी है। जिसने पातंजल योग दर्शन पढ़ा है वह मेरा इशारा समझ जाएगा– *जन्मौषधिमंत्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः*। मंत्र, तप और मन की एकाग्रता के द्वारा भी सिद्धि प्राप्त होती है, और औषधि के द्वारा भी वह अवस्था लायी जा सकती है। अब वह औषधि है क्या?

सब से प्राचीन औषधि थी सोमरस। उस समय सोम नाम की लता होती थी। शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तक उसकी एक-एक पंखुड़ी निकलती थी, उसको टीप लिया जाता था, और फिर पूर्णमासी के बाद वह सब गिरने लगती थी। उसे पेड़ों से निकालकर घड़े में भरकर जमीन के अन्दर डाल देते थे। उसमें और कुछ मिलाते थे, खमीर उठता था जैसे अंगूर को करते हैं। उससे शराब बनाते थे। शराब शब्द कहता हूँ, खमीर उठाए गए पानी को शराब कहते हैं। आब माने पानी, शर माने सड़ा हुआ। उस शराब को वे पीते थे, और उस वक्त केवल ब्राह्मण ही उसे पीता था। ब्राह्मण की परिभाषा पहले बता चुका हूँ तुम लोगों को। पहले केवल त्यागी, तपस्वी ब्राह्मण सोमरस पिया करते थे, जो अपने पर संयम रखते थे। लेकिन बाद में जब सबने लेना शुरू कर दिया तो इसे धीरे-धीरे खत्म कर दिया गया।

आधुनिक युग में अमेरिका और हॉलैण्ड, इन दो देशों में सबसे पहले पता चला कि कोई ऐसा रसायन बनाया जा सकता है, जो मनुष्य की इन्द्रियों को सुन्न कर देता है और मन-मस्तिष्क को विस्तारित करता है। उनमें एक अमरीकी आदमी

था जिसका नाम था टिमोथी लियरी। वह बड़ा विद्वान् था, उसने एल.एस.डी पर बहुत-से प्रयोग किए, और अमरीकी लोग उस नशे को भरपूर लेने लग गए। इसके परिणामस्वरूप वहाँ 'हिप्पी' नाम के समुदाय का जन्म हुआ। ये हिप्पी लोग सामान्य जीवन नहीं जीना चाहते थे। ये गाने वाले, बजाने वाले, नाचने वाले, लड़का-लड़की के बीच फर्क नहीं देखने वाले लोग थे। कुछ भी खा लिया, कहीं पर भी खा लिया, कहीं भी बैठ गये, कहीं पर भी सो गये, एक मस्त और बेफिक्र किस्म की सभ्यता ने जन्म लिया। मगर वहाँ की सरकार ने उन्हें काबू में करने के लिए कड़े कानून बनाने शुरू किए। टिमोथी को अमेरिका से निकाला गया, वह स्विट्ज़रलैण्ड भाग गया। डॉ. राममूर्ति मिश्रा, जिनकी बात मैं कह रहा था, टिमोथी के बहुत अच्छे दोस्त थे। उन्हें भी निष्कासित किया गया, वे बाद में हमें लंदन में मिले थे और पूरी कहानी बतला रहे थे।

जब लोगों ने देखा सरकार हमें बहुत तंग करती है तो उन्होंने कहा कि सीधा गाँजा पीना शुरू कर दो। गाँजा चल पड़ा और दुनियाभर में फैल गया। इतना फैला कि आज कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ गाँजा नहीं पहुँचता। कई देशों में तो सरकार पर दबाव हो रहा है कि इसे कानूनी बनाओ। उस पर वैज्ञानिक अनुसंधान हो रहे हैं कि उससे कितने रोगों में फायदा होता है। वह मेक्सिको से ज्यादा आता है, नेपाल से भी आता है। अफगानिस्तान से अफीम चली गई है। अफगानिस्तान के लोग इतने मालदार हो गए हैं कि टैंक और हवाई जहाज लेकर लड़ रहे हैं आपस में।

पाश्चात्य देशों में ये चीजें जो गई हैं उसका मुख्य कारण यही है कि योगशास्त्र का औषधि शब्द उन लोगों के दिमाग में घुसा हुआ है। उन लोगों का यह मानना

है कि मनुष्य को कुछ हद तक नशा चाहिए ही, या तो वह बाहर से ले, या अपने अन्दर पैदा करे। अगर तुम पूछो कि अपने अन्दर नशा कैसे पैदा करें तो वैज्ञानिकों ने अनुसंधान किया और मैंने भी किया है कि ध्यान जैसे-जैसे गहरा होते जाता है वैसे-वैसे हमारे शरीर के अन्दर एक विशेष हॉर्मोन पैदा होता है जिसका नाम है हिस्टामीन। वह खून में मिलकर हमारे अन्दर वह स्थिति पैदा करता है जो तुम शराब पीने से पैदा करते हो। बोलते हैं न बाबाजी बड़े मस्त रहते हैं, वह मस्ती कहाँ से आती है? किसी शराबी या गंजेड़ी को देखकर कहते हैं, अरे वह तो नशा करता है। एक के बारे में कहते हैं, नशा करता है और दूसरे के बारे में कहते हैं, मस्त रहता है। बात एक ही है।

खून में हिस्टामीन की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। एक चम्मच नहीं, एक बूँद नहीं, बल्कि सुई की नोक में जितना पानी अटे उतनी मात्रा में पैदा होता है गहरे ध्यान में जाने के बाद या तीन-चार घण्टे 'श्रीराम जय राम जय जय राम' बोलने के बाद। वैज्ञानिकों का यह कहना है मनुष्य को थोड़ा बहुत नशा चाहिए, अगर यह नशा कम हो जाएगा तो उसका रक्तचाप बढ़ जाएगा, दिल पर दबाव बढ़ जाएगा और दिल के दौरे की सम्भावना अधिक रहेगी। इसलिए अभी अमेरिका और अन्य पाश्चात्य देशों में बहुत जोर लग रहा है कि गाँजा कानूनी होना चाहिए। अभी कानूनी नहीं है, इसके पीछे एक कारण यह है कि वहाँ शराब बहुत बड़ा उद्योग है। शराब बनाने और बेचने वाले आदमी वहाँ अरबपति होते हैं। अगर वहाँ के लोग गाँजा पीने लग जाएँगे तो शराब उद्योग चौपट हो जाएगा। गाँजा तो बहुत सस्ता होता है, अठन्नी-चवन्नी में मिल जाता है, जबकि शराब की बोतल एक-दो हजार की होती है। अब तुम रातभर में हजार की चीज पियोगे या अठन्नी-चवन्नी की चीज। आखिर वहाँ भी तो कम आमदनी वाले लोग हैं। खैर अब वहाँ बहुत जोर लग रहा है, मैं तो समझता हूँ कि अगले बीस वर्षों में यह सब जगह कानूनी हो जाएगा।

हमारे यहाँ साधु-महात्माओं को गाँजा पीने में कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा। बहुत-से साधु-महात्मा और नागा बाबा नेपाल चले जाते हैं, क्यों? वहाँ इन्हें गाँजा मुफ्त मिलता है। राजा की तरफ से साधुओं को वहाँ दो चीजें मुफ्त मिलती हैं, लकड़ी और गाँजा। अब मिलती है कि नहीं, पता नहीं, मैं तो बहुत सालों से गया नहीं हूँ। पर मेरे कहने का मतलब यह कि गाँजा या भाँग खराब है ऐसी बात नहीं है। खराब तब होती है जब तुम इसके उपयोग का कारण नहीं जानते हो। आखिर तुम लोग जो अंग्रेजी दवा खाते हो, वह क्या है? अंग्रेजी दवाओं में शायद ही कोई ऐसी दवा हो जिसमें कोई प्रशान्तक न मिलाया गया हो, या जो शराब मुक्त हो। कुछ आयुर्वेदिक दवाओं में भी शराब रहती है जैसे कुमारी आसव। इन सबमें शराब रहती है, और यह बहुत प्राचीन काल से चला आया है।

इन चीजों से नुकसान भी निश्चित रूप से हो सकता है। आखिर विष और अमृत में केवल उपयोग का फर्क है। एक उपयोग से वह विष बनता है और दूसरे

से अमृत बनता है। साँप काटने की दवा क्या है? साँप का जहर। साँप के जहर को निकाला जाता है, फिर उससे सीरम निकाला जाता है और फिर दवा में उसको भरा जाता है। उसे कहते हैं 'एण्टी वेनम सीरम'। विष ही विष को काटता है। केवल उपयोग का फर्क है, और कुछ तो है नहीं।

ग्रामीण जीवन

हिन्दुस्तान की संस्कृति का आधार कृषि और कृषि सम्बन्धित श्रम है। कृषि सम्बन्धित श्रम क्या होता है? हल चलाना, रोपा करना, घास निकालना, फसल काटना, पशुपालन—यह कृषि सम्बन्धित श्रम है। हिन्दुस्तान में करीब सत्तर प्रतिशत लोग इसमें सीधे सम्मिलित हैं। जिस देश की 70 प्रतिशत जनता कृषि पर अवलम्बित है उस देश की संस्कृति को टेक्नॉलोजी की दिशा में मोड़ना बहुत कठिन काम है क्योंकि टेक्नॉलोजी में धन का निवेश बेहद होता है और उतना तुम्हारे पास है नहीं। मगर कृषि के बारे में हमारे लोगों को अच्छी जानकारी है। कम-से-कम दिन में दो रोटी मिल ही जाती है इन लोगों को।

आज विडम्बना यह है कि इस तरफ किसी भी पढ़े-लिखे व्यक्ति का, किसी भी राजनैतिक शक्ति का या किसी भी सरकार का ख्याल नहीं जा रहा है। स्टेडियम या लाईब्रेरी बनाने के लिए तुम्हारे पास पैसे हैं, किसी नेता का स्मारक बनाने के लिए तुम्हारे पास पैसे हैं, देश-विदेश में अपनी संस्कृति फैलाने के नाम पर नाच-गाना दिखाने के लिए पैसे हैं, लेकिन गाँव में चापाकल बिठाने के लिये, ताल-तालाब बनाने के लिये तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं। यहाँ गाँवों में किसी टेक्नॉलोजी की आवश्यकता नहीं है, गाँवों को केवल एक चीज की आवश्यकता है—पानी। ठीक है, आजकल टीशू कल्चर जैसी अच्छी आधुनिक तकनीकें हैं, अगर वह न भी दे सको, अगर तुम आधुनिक खाद भी न दे सको, पर यदि हर किसान के पास सिंचाई का ठीक साधन हो, ऊपरवाले पर अवलम्बित न रहे तो हिन्दुस्तान के सामने कोई भी मुल्क खड़ा नहीं रह सकता। यह देश बहुत तेजी से आगे बढ़ेगा क्योंकि यहाँ का किसान कुल मिलाकर संतोषी है। अगर फसल की कटनी में उसका सालभर का अनाज हो जाए और दीपावली-दशहरा में बच्चों के लिये कपड़ा मिल जाए और दो-चार साल में लड़की के लिए कुछ गहने भी निकल आएँ तो किसान इसी से संतुष्ट है। उसे ज्यादा जरूरत नहीं है। वह फटी चप्पल भी पहन सकता है, बिना चप्पल के भी रह सकता है, जमीन पर भी सो सकता है, मच्छर उसे काटता ही नहीं है। आखिर चोर वहीं जाता है जहाँ पैसा होता है। मच्छर वहीं जाएगा जहाँ खून होगा। उसके पास खून ही नहीं है, इसलिए मच्छर नहीं जाता उसके पास। सब मच्छर शहर चले जाते हैं तुम लोगों को खाने के लिए। कौए भी यहाँ नहीं रहते, सब शहर चले जाते हैं, बोलते हैं क्या करेंगे यहाँ, कुछ मिलता ही नहीं है। खुद

तो तुम दो दिन में एक रोटी खाते हो, क्या दोगे हमको? इसलिए कौआ, चिड़िया, कुत्ता सब देवघर में रहते हैं, यहाँ से पलायन कर गए सब। यह भले ही मजाक के रूप में बोल रहा हूँ, मगर है यह बहुत गंभीर बात।

दूसरी चीज है स्वास्थ्य और चिकित्सा। हमें किसी ने कहा कि यहाँ अस्पताल खोलना चाहिए। हमने कहा नहीं, दस-बारह लाख रुपये खर्च करके क्या फायदा। एक छोटी-सी क्लिनिक बनाकर फूस की छत लगा दी। डॉक्टर भी नहीं रखा, एक नर्स रखी है जो इंग्लैण्ड से आई है। और बीमारी क्या है यहाँ? उच्च रक्तचाप नहीं है, दिल की बीमारी भी नहीं होती है। केवल दस्त, सर्दी, बुखार, खुजली—यही सामान्य बीमारियाँ होती हैं इन लोगों की। इनकी चवन्नी की बीमारी होती है जबकि शहरी लोगों को सौ टके की बीमारी होती है। ये लोग सारा दिन काम करते हैं। टट्टी-पेशाब के लिए इन्हें दूर जाना पड़ता है, नहाने के लिए दूर जाना पड़ता है, बाजार के लिये दूर जाना पड़ता है। इनकी हर चीज में परिश्रम है, और हम लोगों का क्या है, जरा-सा पलटो और शौचालय मौजूद है। दो कदम खिसको और रिक्शा मिल जाता है। हम लोगों की शारीरिक मेहनत इतनी कम हो गई है कि हमारे शरीर में ढेरों विषाक्त द्रव जमा हो गए हैं जो रोगों को पैदा करते हैं।

अगर गाँवों पर थोड़ा-सा भी ध्यान दिया जाए तो हमारा देश स्वर्ग हो सकता है, पर ऐसा नहीं हो रहा है। यहाँ के लोग बहुत अच्छे हैं। हम तो दुनिया के हर देश में रहे हैं, पर हमें यहाँ बहुत अच्छा लगता है। गाँव के लोगों से मिलना-जुलना अच्छा लगता है। मैं तो रात-दिन इन लोगों को बोलता हूँ, पढ़ो, लड़कियों को पढ़ने दो। अब यहाँ धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा है। हमारे यहाँ जितने उच्च विद्यालय हैं, सब में भर्ती हो रही है। लड़कियाँ भी अब पढ़ने लगी हैं।

—12 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

शिक्षा का विलक्षण अवसर

सं. सुकीर्ति, राजनाँदगाँव (*योग अध्ययन में डिप्लोमा सत्र, 2015-16*)

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में सत्य ही कहा है कि जो निश्चित है, वह तो होकर ही रहता है– *होइहि वही जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावही साखा।* इसकी सच्चाई तब प्रत्यक्ष हुई जब मैंने 'योग अध्ययन में डिप्लोमा सत्र' करने हेतु गंगा दर्शन आश्रम में प्रवेश किया। साथ ही यह भी अनुभव हुआ कि प्रकृति के अपने तरीके होते हैं मानव को वहाँ ले जाने के, जहाँ वह उसे ले जाना चाहती है।

गंगा दर्शन में एक विद्यार्थी के रूप में हुए अपने अनुभवों को कुछ शब्दों में बाँधने में मेरी लेखनी असमर्थ है। परन्तु यह भी सत्य है कि भावों की अभिव्यक्ति को शब्दों के दुरूह जाल की आवश्यकता नहीं। गंगा दर्शन आश्रम में बिताया प्रत्येक क्षण कुछ-न-कुछ सीख अवश्य दे जाता है, वह सीख जो कक्षा-कक्ष की शिक्षाओं से बिल्कुल परे है। मेरे लिए गंगा दर्शन आश्रम केवल आश्रम नहीं, मेरा अपना घर है। वह पवित्र स्थान जहाँ प्रवेश करते ही उद्वेलित हृदय स्वत: ही शान्त हो जाता है, पूर्णतया शान्त।

इस सत्र को करने का मेरा उद्देश्य केवल योग सीखना ही नहीं था, वरन् यौगिक जीवन का अनुभव लेना भी था। साथ ही यह मेरे संकल्प की पूर्णता की ओर एक छोटा-सा पग था। एक अवसर, जहाँ मैं स्वयं को जानना चाहती थी। आश्रम जीवन में कई बार ऐसे अवसर आए जब पूज्य स्वामीजी की शिक्षाओं का पालन करने में अत्यन्त कठिनाई महसूस हुई। उनके द्वारा बताए गए यम-नियमों को अपनाने का प्रयास किया, कभी सफल हुई तो कभी विफल, किन्तु प्रयास करना नहीं छोड़ा।

यहाँ आकर ही योग के वास्तविक अर्थ को जाना कि योग मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सन्तुलित एवं समन्वित विकास करता है। योग मानव में सकारात्मकता एवं सद्गुणों की वृद्धि करता है, ताकि मनुष्य स्वस्थ शरीर, सन्तुलित मन एवं तीक्ष्ण बुद्धि से परिपूर्ण हो तथा स्वयं की प्रतिभा को पहचान, एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सके। यह यौगिक जीवन का ही प्रभाव था कि मैंने इस सत्र के दौरान न केवल स्वयं में, अपितु अपने साथी विद्यार्थियों के व्यवहार एवं प्रतिक्रियाओं को परिवर्तित होते देखा।

आश्रम की सम्पूर्ण गतिविधियाँ ही इस प्रकार संचालित हैं कि मनुष्य की बुद्धि, भावना एवं कर्म का समन्वित विकास हो। यदि एक नन्हें आध्यात्मिक पौधे को ऐसा यौगिक वातावरण मिले तो निश्चित ही एक दिन वह सम्पूर्ण मानव समाज

को सद्‌गुणों एवं सकारात्मकता का फल प्रदान करेगा। और साथ ही उस वृक्ष की प्रेम भरी छाँव में यह क्लांत मानव समाज विश्रांति पा सकेगा।

गंगा दर्शन आश्रम तो मेरे हृदय में बसा वह स्थान है जहाँ की शीतल वायु में भी अनाहत नाद स्पंदित होता है। जब भी आश्रम अन्तेवासियों को अपनी ओर देख मुस्कुराते देखती तो सदा ही महसूस होता मानो स्वयं स्वामीजी ही उनकी आँखों से मुस्कुरा रहे हैं। उन सभी के प्रेम ने मेरे हृदय को भी प्रेम से भर दिया। क्या ऐसे दिव्य स्थान से दूर रहा जा सकता है?

आश्रम जीवन के दौरान कई ऐसे क्षण आए जब मैंने दिव्यता के स्पर्श का अनुभव किया। एक दिन संध्याकालीन साधना में कृष्ण-कीर्तन हो रहा था। मैं सत्यम् वाटिका के एम्फीथियेटर की सबसे ऊपर की सीढ़ी पर आँखें बन्दकर धीरे-धीरे नृत्य कर रही थी। हृदय ईश्वर के प्रेम एवं कीर्तन के मधुर स्वरों में इतना खो गया था कि कुछ क्षणों के लिए देश और काल का बोध ही समाप्त हो गया। अचानक किसी ने कहा, 'आँखें खोलो'। आँखें खोलीं तो देखा आसपास कोई नहीं था। नीचे देखा तो मेरे पैर सीढ़ी के बिल्कुल किनारे पर थे, जहाँ से एक इंच भी आगे जाने पर मैं नीचे गिर पड़ती। उस क्षण हृदय ईश्वरीय प्रेम से भर गया, लगा कि वे हमारे कितने पास हैं या शायद हमारे भीतर ही हैं। बस एक प्रार्थना हृदय से निकल पड़ी–

हर वह अनुभव जिससे मैं गुजरती हूँ,
हर वह श्वास जो मैं लेती हूँ
तुम्हारे लिए मायने रखती है,
जैसे मैं अकेली ही तुम्हारी चिन्ता का लक्ष्य हूँ।

प्रभु मुझे इतनी समझ दो,
कि फिसलन के क्षण में तुम्हारा स्पर्श पा सकूँ,
मुझे सिखाओ कि मैं तुम्हारी पुकार सुन सकूँ,
मुझे अपने सबल किन्तु कोमल स्पर्श से स्फूर्त करो।

चारों ओर बिखरे तुम्हारे उपहारों को देखकर
मेरा चित्त तुम्हें छोड़कर अन्यत्र, कहीं भी न जाए,
ऐसी कृपा करना।

आखिर वह कौन-सी दिव्य शक्ति है जो सदैव हमारे साथ है और हमें संघर्षों एवं कठिनाइयों के समक्ष खड़े होने तथा उनसे लड़ने की शक्ति देती है और विजयी बनाती है। ईश्वर को कभी देखा तो नहीं, परन्तु संत तुलसीदास जी की लेखनी पर पूर्ण आस्था है कि वह दिव्य शक्ति कोई और नहीं 'गुरु' ही हैं– *बंदऊँ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।*

अपने आसपास जब मैंने बहुतों को कठिनाइयों से हिम्मत हारते व टूटते देखा तो स्वयं को एक सर्वशक्तिमान् गुरु का शिष्य होने का सुअवसर प्रदान करने हेतु ईश्वर को न जाने कितनी बार धन्यवाद दे डाला। मेरे संघर्षों में पूज्य गुरुदेव का प्रेम ही मेरा संबल बना और यदि मैं यह कहूँ कि वे ही थे जिन्होंने मेरे भीतर आकर उन संघर्षों का सामना किया एवं मुझे विजयी बनाया तो गलत न होगा। उन्हें कभी कुछ कहने की जरूरत ही नहीं हुई। बिना कुछ बोले ही सब कुछ जानने का गुर जो उन्हें पता है–

क्या इल्म उन्होंने सीख लिये, जो बिन लेखे को बाँचे हैं।
और बात नहीं मुख से निकले, बिन होंठ हिलाए जाँचे हैं॥

गुरु कृपा के विषय में क्या लिखूँ? लेखनी रुक-सी जाती है, संसार के सारे शब्द कम पड़ जाते हैं। हृदय कितना कुछ लिखना चाहता है, किन्तु उसके लिए न तो कागज पर्याप्त है और न ही स्याही। कबीरदास जी ने सत्य ही लिखा है -

धरती सब कागद करूँ, लेखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसी करूँ, गुरु गुण लिखा न जाए॥

जीवन में सीखने का यह विलक्षण अवसर प्रदान करने हेतु पूज्य गुरुदेव को कोटि-कोटि धन्यवाद।

गुलामों के गुलाम

एक बादशाह किसी संत के पास पहुँचा और बोला, 'मुझे सेवा का अवसर दीजिए। आप जो कुछ चाहें, सेवा में प्रस्तुत कर दूँगा।' संत ने हँसकर कहा, 'मुझसे यह बात कौन कह रहा है? तुम तो मेरे गुलामों के गुलाम हो।'

बादशाह चौंक पड़ा। उसने कहा, 'मैं आपका मतलब नहीं समझ पाया। कृपया स्पष्ट कीजिये।' संत ने कहा, 'मैंने काम-क्रोध पर विजय पा ली है। वे मेरे गुलाम हैं और तुम उन दोनों के गुलाम हो। बात समझ में आ गई!' बादशाह अपने आपको सुधारने का निश्चय करके वहाँ से चला गया।

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

वृत्ति और विचार में क्या अन्तर है?

विचार मन में आते हैं, जाते हैं, जबकि वृत्ति भंवर है, जिसमें आप फँस जाते हैं। एक विचार मन में आया, लेकिन उस विचार ने आपको परेशान नहीं किया। वह आया, आपने उसको देखा, उसके बारे में सोचा, फिर वह चला गया दिमाग से बाहर। लेकिन एक दूसरे प्रकार का विचार आया जो आपको परेशान कर देता है। बेटी की शादी में समस्या हो, किसी से झगड़ा हुआ हो, पैसा नहीं मिला हो– मतलब किसी भी ऐसी परिस्थिति में विचार आया और आप उसके भंवर में पकड़े गये। वह विचार, जो आपको सताते रहता है, जो मन को पकड़ लेता है, वह हो जाता है वृत्ति।

वृत्ति में मन का स्वरूप बदल जाता है। एक अन्य स्थिति मन पर स्वयं को आरोपित कर देती है और मन की शान्त, सौम्य, संतुलित अवस्था भंग हो जाती है। विचार तो आता है और जाता है, उसका सम्बन्ध बुद्धि से या जानकारी से या सजगता से रहता है। कोई पत्थर वहाँ गिरा, आवाज आपको सुनाई दी, मन में विचार आया कि कुछ गिरा है, लेकिन उसके बाद मन हट जायेगा वहाँ से। सजगता ने उस आवाज को पकड़ा, लेकिन परेशानी नहीं है उससे, इसलिये ध्यान वहाँ से तुरंत हट गया। लेकिन वही पत्थर आपको लग जाए तो परेशानी होगी। आप सोचने लगेंगे कि किसने फेंका, किसलिये फेंका। वह है वृत्ति, एक ही चीज के बारे में बार-बार सोचते जाना। और विचार है, एक बार सोचना और फिर चले जाना।

–21 फरवरी 2015, गंगा दर्शन

आश्रम में एक ही काम करते-करते ऊब बोर हो जाते हैं। इसके लिए क्या उपाय है?

कल्पना करो कि तुम्हारा घर है, जिसमें तुम अकेले रहते हो। न माता-पिता हैं, न बीवी-बच्चे हैं, न कोई सगा-संबंधी है। अपने सब काम तुम्हें ही करने हैं। उठने के बाद बिस्तर बनाना है, नाश्ता बनाना है, दिन का और शाम का भोजन भी बनाना है, घर की सफाई करनी है, बर्तनों को मांजना है, कपड़ों को धोना है। क्या छः महीने या सालभर या जीवनभर यह सब करते-करते ऊब जाओगे? नहीं। रोज अपना नाश्ता बनाओगे, रोज अपने घर की सफाई करोगे, रोज अपने सब काम करोगे, लेकिन यह कभी नहीं बोलोगे कि मैं बोर हुआ हूँ, बल्कि सब कार्यों को कर्त्तव्य रूप में निभाने का प्रयास करोगे और उनसे भागोगे नहीं। ऐसी परिस्थिति में बोरियत कहाँ है?

आदमी बोर तब होता है जब वह परिस्थिति से अपने आपको अलग देखता है। जो दृष्टांत मैंने तुम्हें अभी दिया वही दृष्टांत मैं अपने ऊपर लागू करता हूँ। जैसे तुम लोगों का अपना एक घर है, वैसे ही मेरा घर यह आश्रम है। मैं यहाँ पर पचास साल से एक ही स्थान में झाड़ू लगा रहा हूँ, फिर भी उसमें बोर नहीं हुआ, क्योंकि वहाँ अपनत्व की भावना है। हम इसे अपना स्थान मानते हैं, यहाँ के सारे काम-काज को अपना समझते हैं। लेकिन जो व्यक्ति बाहर से यहाँ आता है, उसे अगर हम कह दें कि यहाँ पर झाड़ू लगाओ तो वह जल्द ही कहेगा, 'जब से आया हूँ, यहीं पर झाड़ू लगा रहा हूँ। मैं बोर हो गया हूँ।' वहाँ पर अपनत्व की भावना नहीं है। यह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है, अपने आप को एक स्थान का मानना। जब तक हम अपने आप को उस स्थान का नहीं मानेंगे, वहाँ के किसी भी कर्म से हम जरूर ऊब जाएँगे।

दूसरी बात यह कि तुम्हारे घर में अगर काम नहीं है तो भी तुम मस्त हो, और काम है तो उसे करने में भी मस्त हो। वैसे ही आश्रम में भी अगर काम नहीं है तो भी मस्त रहो। लेकिन यहाँ मुश्किल है कि काम नहीं देने पर भी लोग कहते हैं हम बोर हो गये, और काम देने पर कहते हैं कि काम करते-करते बोर हो गये! मतलब दोनों तरफ से आश्रम का व्यवस्थापक फँसता है। तुम अपने घर में हो और कोई काम नहीं है तो क्या तुम बोर होगे? नहीं। उस समय भी तुम मस्त रहते हो। चाहे तो बिस्तर पर पैर पसार कर लेट जाओ, या कुर्सी पर बैठकर चाय-पानी पीते रहो या अखबार पढ़ते रहो, लेकिन मस्त रहते हो क्योंकि वह तुम्हारा अपना घर है।

उसी तरह आश्रम में भी जब तक अपनत्व की भावना नहीं आती है, मन की किसी भी अभिव्यक्ति को संयोजित करना संभव नहीं होता है।

–14 मार्च 2015, गंगा दर्शन

द्रष्टा कौन है? द्रष्टाभाव को किस तरह प्राप्त किया जा सकता है?

हमारे गुरुजी कहते थे कि जब मन अशान्त, चंचल और विक्षिप्त होता है, उस समय एक विचार आता है मन में कि मैं अपने आप को शान्त करूँ। यह विचार आया कहाँ से? मन से ही आया है। मन की दो अवस्थाएँ होती हैं, बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। बहिर्मुखी अवस्था का संबंध इंद्रियों के साथ है, मन, बुद्धि, वासना और अहंकार के साथ है, जबकि अंतर्मुखी अवस्था का संबंध है आत्मा के साथ, शांति और सौम्यता के साथ। मन के ये दो पक्ष होते हैं।

बहिर्मुखी मन कर्त्ता और भोक्ता है। उसका संबंध संसार से, विषयों से जुड़ा है और वह माया में ओत-प्रोत है। जब तक मन की यह स्थिति है, चंचलता, विक्षिप्तता और उद्विग्नता उसे प्रभावित करती हैं। यहीं पर मन की वृत्तियाँ चंचल होती हैं। लेकिन जब हम मन की अंतर्मुखी अवस्था में प्रवेश करते हैं तब वहाँ पर कर्त्तापन और भोक्तापन से अपना नाता टूट जाता है। जब हम कर्त्ता या भोक्ता नहीं हैं तो क्या हैं? द्रष्टा हैं, देख रहे हैं नाटक को, देख रहे हैं अपने मन के खेल को, लेकिन उसमें शामिल नहीं हो रहे हैं।

द्रष्टाभाव यह संकेत देता है कि आप कर्त्तापन और भोक्तापन से अलग होकर स्वयं के साक्षी बने हो। एक बार जब हम कर्त्तापन और भोक्तापन से अलग हो जाते हैं तो स्वाभाविक रूप से अपने आपको माया से भी अलग कर देते हैं, क्योंकि कर्त्तापन और भोक्तापन माया में संलग्न होने के परिणाम होते हैं। कर्त्तापन और भोक्तापन से अपने आप को दूर कर लेने पर द्रष्टाभाव स्वत: जागृत होता है।

योगसूत्रों में यही बात समझाई गई है। पहला सूत्र है *'अथ योगानुशासनम्'*–योग एक व्यवस्था है, एक शिक्षा है, एक अनुशासन है, जो तुम्हें दूसरे सूत्र में इंगित लक्ष्य की ओर ले जाता है– *'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'*। इस व्यवस्था, शिक्षा और अनुशासन से तुम अपनी चंचल चित्तवृत्तियों को शांत करते हो। चित्तवृत्ति चंचल कब है? कर्त्तापन और भोक्तापन के भाव से जुड़कर वृत्ति चंचल होती है और जब इन चंचल चित्तवृत्तियों का निरोध होता है तब कर्त्तापन एवं भोक्तापन का शमन होता है। फिर तीसरा सूत्र आता है– *'तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्'*। तब जाकर मनुष्य द्रष्टा बनकर अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव करता है। संक्षेप में यही समझना पर्याप्त है कि द्रष्टाभाव मन की संतुलित, व्यवस्थित और चैतन्य अवस्था को दर्शाता है, जबकि कर्त्तापन या भोक्तापन संसार के विषयों में रमे हुए मन का प्रतीक है।

–15 मार्च 2015, गंगा दर्शन

स्वामीजी, आपने शतचण्डी यज्ञ में कहा था कि आध्यात्मिक जागृति अपने गुरु के सान्निध्य में होती है। हम आपके सान्निध्य में हैं, किन्तु आध्यात्मिक जागृति नहीं हुई।

एक बार एक इटालियन ने भी कुछ ऐसा ही प्रश्न किया था मुझसे, 'मंत्र लिये बारह साल हो गये, लेकिन मुझे कुछ मिला नहीं।' मैंने जब उससे पूछा, 'तुमने मंत्र जप कितना किया है?' तो उसने कहा, 'जिस दिन मंत्र मिला था उस दिन जप किया था, फिर बारह साल इंतजार करते रहा कि मुझे क्या मिलने वाला है।'

इस तरह की मानसिकता को लेकर जो चेला बनता है, वह अपनी परेशानी को लेकर साल में एक-आध बार चिट्ठी लिख देता है और उसके बाद फिर कभी मिलता भी नहीं है। ऐसे में वह क्या अपेक्षा करेगा? पत्थर यदि पहाड़ में रहे और मूर्तिकार शहर में, और पत्थर बोले कि 'मैं आपका भगत हूँ, फिर भी आज तक मूर्ति नहीं बना हूँ', तो उसका क्या मतलब होगा? क्या पत्थर ने आज तक अपने को मूर्तिकार के हाथों में सौंपा और कहा कि बेखटके छेनी-हथौड़ा चलाओ? मूर्तिकार हजारों पत्थरों के बीच रह सकता है, लेकिन सभी पत्थरों से मूर्ति नहीं बनती है। जब तक पत्थर खुद को मूर्तिकार के हाथ में नहीं सौंपता, तब तक उससे सुंदर मूर्ति नहीं बन सकती। जब तक पेड़ की कटाई-छँटाई नहीं होती, वह ऊँचा और सुन्दर नहीं बन सकता। यही बात गुरु-शिष्य संबंध में भी लागू होती है।

–22 मार्च 2015, गंगा दर्शन

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग दर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 465, ISBN: 978-81-85797-97-7

इस पुस्तक में योग की समग्र और प्रामाणिक रूपरेखा के साथ-साथ सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन के व्यावहारिक पक्षों की भी विवेचना की गई है। सैद्धान्तिक भाग में हठ योग, राज योग, मन्त्र योग, कर्म योग, ज्ञान योग, लय योग और गुह्य योग के विस्तृत वर्णन के साथ-साथ योग की विभिन्न परम्पराओं और दर्शनों का उल्लेख किया गया है। व्यावहारिक भाग में योग उपनिषदों के उत्कृष्ट अभ्यासों, सामान्य बुद्धि योग, समग्रात्मक शरीर विज्ञान, असन्तुलन और रोग के कारण एवं स्वास्थ्य की यौगिक व्याख्या की गई है।

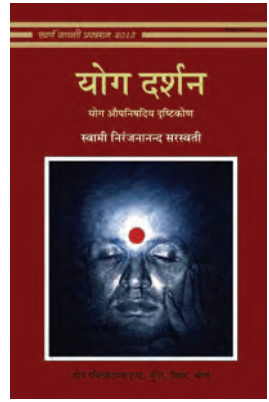

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

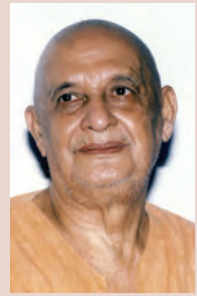

www.biharyoga.net
यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net
योगा पत्रिका की वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में खोजने की सुविधा भी उपलब्ध है।

आवाहन वेबसाइट

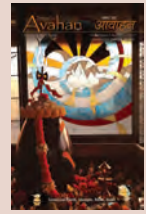

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ के कार्यक्रम एवं प्रशिक्षण 2016

सितम्बर 24-30	हठ योग-षट्कर्मों का विशेष सत्र (हिन्दी/अंग्रेजी)
अक्टूबर 3-30	प्रगतिशील योगविद्या प्रशिक्षण (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3- जनवरी 29	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अंग्रेजी)
अक्टूबर 22-28	राज योग-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (हिन्दी/अंग्रेजी)
नवम्बर 5-11	क्रिया योग-प्रारम्भिक (हिन्दी/अंग्रेजी)
नवम्बर 7- फरवरी 7 2017	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (अंग्रेजी)
दिसम्बर 19-23	योग चक्र शृंखला (हिन्दी/अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।